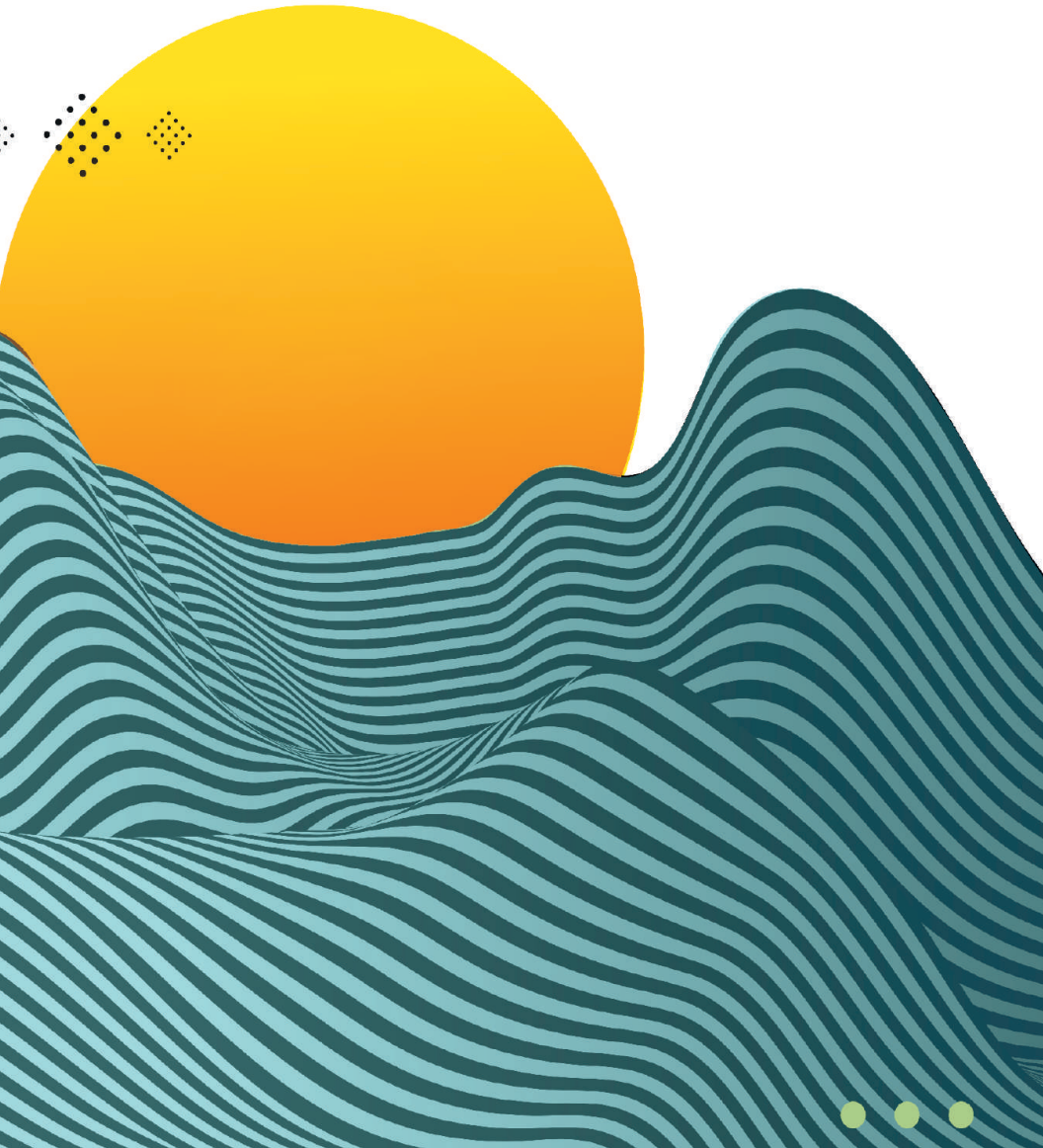
ISSN: 0971-8478

नवम्बर 2023

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक





योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

आजकल

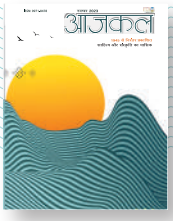
स्थापित 1945

नवम्बर, 2023

कार्तिक-अग्रहायण 1945

वर्ष : 79 / अंक : 7

पृष्ठ : 108 / पूर्णांक : 939



इस अंक में

आलेख

11 बाल-काव्य के क्षेत्र में बाल-ग़ज़ल — रोहिताश्व अस्थाना

संस्मरण

16 वीरेन्द्र नारायण : बहुमुखी प्रतिभा के धनी — अरविंद कुमार

श्रद्धांजलि

21 रमेश कुंतल मेघ : चित्रकला मेरा मूलाधार — पुरुषोत्तम कुंदे

साक्षात्कार

26 बचपन से ही दोस्त की तरह रहीं माँ : रचना यादव — विपिन चौधरी

कहानी

32 दायरा — रमेश मनोहरा

36 बाबूजी का बुख़ार — देवांशु पाल

41 वे कुछ क्षण — सुमन बाजपेयी

कविताएँ

48 क़ालीन — अरुण आदित्य

49 एक छोटी-सी ख़ुशी — मनोरमा गौतम

50 धान रोपती स्त्रियाँ — वृंदा पांडेय

51 पानी के लिए तरसती नहर — खेमकरण 'सोमन'

वातायन

52 सुनो! निर्माताओं! — बालकृष्ण काबरा 'एतेश'

यायावर

54 गुलेरी की स्मृतियों को संजोए गुलेर — राजेन्द्र राजन

स्पर्धा आजकल

62 हिन्दी भाषा और देवनागिरी लिपि — आलोक श्रीवास्तव

69 राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार — रवि रौशन चंचल

विविध रंग

72 रूपाकारों की एक अनन्य शृंखला — अवधेश अमन

77 विनम्रता वहीदा के व्यक्तित्व का 'इनबिल्ट' हिस्सा — विनोद तिवारी

82 कभी लुप्त न हो जादू (जादूगर सम्राट शंकर से बातचीत) — प्रदीप सरदाना

पुस्तक समीक्षा

87 आंतरिक अभिव्यक्ति की संजीदा ग़ज़लें — अनिल अग्निहोत्री

90 स्त्री जीवन के संघर्ष की कहानियाँ — शिवजी श्रीवास्तव

93 सिने संसार का अंश दर्शन — बलराम अग्रवाल

बीता कल

95 भारतीय कला — नानालाल चमनलाल मेहता

साहित्यिक गतिविधियाँ

97 रिपोर्ट — सूर्यदीन यादव/हीरालाल नागर/संतोष कुमार

प्रकाशन प्रायोजन

103 सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास — प्रियंका सिंह

105 बेगम अख़्तर का ज़िन्दगीनामा — रेमी कुमारी

मुख्य सम्पादक : कुलश्रेष्ठ कमल

सम्पादक : फरहत परवीन

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक : आजकल प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 601डी, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

दूरभाष : 011-24362915

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डी.के.सी. हृदयनाथ

आवरण सज्जा : बिन्दु वर्मा

सदस्यता शुल्क : वार्षिक : 230 रुपये (सामान्य डाक से)
434 रुपये (रजिस्टर्ड डाक से)

पत्रिका न मिलने की शिकायत अथवा आजकल की सदस्यता लेने या पुराने अंक मँगाने के लिए pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या सम्पर्क करें- दूरभाष : 011-24367453

सदस्यता सम्बन्धी पत्राचार का पता :

अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार), पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रकाशन विभाग के देशभर में स्थित विक्रय केन्द्रों की सूची के लिए देखें पृ.सं. 104

पत्र





रंगयात्रा का विस्तृत पटल

सितम्बर 2023 अंक मिला। यह अंक 'रंगमंच' पर विशेषांक है। 'प्रसंगवश' बहुत पसन्द आया। इसमें रंगमंच के अनेक विशेषज्ञों पर चर्चा की गई है जिनमें वरिष्ठ रंगकर्मी हबीब तनवीर को भी याद किया गया है।

हबीब तनवीर की रंगयात्रा का पटल बहुत विस्तृत एवं विविधतापूर्ण है। देशी, विदेशी, लोक, शास्त्रीय, मौलिक और अनूदित आदि विभिन्न श्रेणियों में उनका भरपूर काम है। इसके अलावा उनकी रुचि सामाजिक, आर्थिक, मानसिक और कुछ अन्य तरह की विसंगतियों को समेटे हुए लेखन पर अधिक रही है। अंक में रंगशिल्पी हबीब तनवीर से महावीर अग्रवाल की बातचीत बड़ी समसामयिक है। यह वर्ष हबीब तनवीर का जन्म शताब्दी वर्ष भी है। उन्हें सादर नमन!

'रंगमंच' पर आधारित सभी लेख पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक रमेश चन्द्र गौड़ से संजीव श्रीवास्तव की बातचीत से कई नई बातों की जानकारी हुई। कहानी और कविताएँ अच्छी लगीं। हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में देवेन्द्र चौबे का लेख 'हिन्दी साहित्य का इतिहास : एक वैकल्पिक इतिहास की ज़रूरत' पढ़कर एक बार फिर हिन्दी की स्थिति के बारे में चिन्तन करने को मजबूर करता है। कुल मिलाकर यह अंक उत्कृष्ट एवं संग्रहणीय है।

-रमेशचन्द्र शुक्ल
ज़िला उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

गुरु-शिष्य परम्परा

सितम्बर, 2023 अंक में प्रेमकुमार गौतम की कहानी 'पतंगबाज़ी' पढ़ी। कहानी गुरु की शिष्य या शिष्य की गुरु के प्रति असल भूमिकाओं पर न सिर्फ़ प्रश्न उठाती है, बल्कि एक अच्छे विचार और सोच के साथ अंत की ओर बढ़ती है। जहाँ बग़ैर कुछ बोले शिष्य अपने गुरु को बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देता है। पुरानी धारणाएँ भी टूटती हैं कि कुछ बनने के लिए सिर्फ़ पढ़ा-लिखा होना ही ज़रूरी नहीं है।

कहानी में पढ़ाई-लिखाई में कमज़ोर बच्चे की पीड़ा है और गुरु का अपराधबोध भी है। कहानी में जिस खेल का ज़िक्र हुआ है, वह कल भी था, आज भी खेला जाता है। जो समस्या कल भी प्रासंगिक थी, आज भी है। बस उसके समाधान के लिए नज़रिया बदलना ज़रूरी है।

-प्रगति गुप्ता
जोधपुर (राजस्थान)

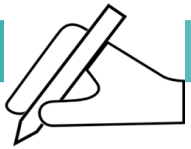
कृतज्ञता के भाव उभरे

'रंगमंच की दशा एवं दिशा' पर केन्द्रित सितम्बर 2023 अंक बहुत पसन्द आया। रंगमंच के लिए समर्पित साहित्यकारों के बारे में बहुत ही विस्तृत जानकारी मिली जिससे ज्ञानवर्धन भी हुआ तथा उनके प्रति कृतज्ञता के भाव भी उभरे। पुष्पा बरनवाल का पणिक्कर पर आलेख, रंग-जगत पर सुनीता का आलेख, रंगमंच की विधाओं पर दानिश इक़बाल का आलेख प्रेरणादायक रहे। इस अंक के सभी लेखकों को बधाई एवं आभार!

'आजकल' के सभी अंक समय से मिलते हैं तथा संग्रहणीय रहते हैं। पूरी सम्पादकीय टीम को बधाई!

-प्रदीप गौतम सुमन
रीवा (मध्य प्रदेश)

प्रकाशकीय



'आजकल' का नया अंक आपके हाथों में है। इसे नए आकार, नए कलेवर, नए रूपरंग और कुछ नए विषय-वस्तु के साथ प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। पुरानी कहावत "परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है, समय के अनुसार चीज़ें बदलती हैं" को चरितार्थ करते हुए इसमें समयानुकूल जो परिवर्तन किए गए हैं, उनमें सबसे प्रमुख है इसके सभी पृष्ठों की रंगीन छपाई। दूसरा तथा पत्रिका पर पहली नज़र डालते ही दिखने वाला बड़ा फ़र्क है इसका आकार! यह आकार पढ़ने और पकड़ने में सुविधाजनक तो है ही, साथ ही सफ़र में ले जाने-लाने में भी सरल है। यह जानकर भी आपको प्रसन्नता होगी कि इसके पृष्ठों की संख्या दोगुनी कर दी गई है। प्रबुद्ध पाठकगण को अब 'आजकल' के आगामी अंकों में नए स्तम्भों, नई सम्भावनाओं और आशाओं से परिपूर्ण नई एवं विविध सामग्री भी मिलेगी लेकिन जो चीज़ें यथावत रहेंगी वे हैं, इसके पुराने आकर्षण– कहानी, लेख, साक्षात्कार, कविताएँ और ग़ज़ल। यानी समृद्ध विरासत और परम्परा से कोई समझौता नहीं।

परम्परा की बात करते समय प्रकाशन विभाग और इसकी लोकप्रिय पत्रिकाओं तथा अनेक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों एवं प्रकाशनों की समृद्ध विरासत का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है। 1941 में स्थापित प्रकाशन विभाग भारत सरकार का प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान है। कला-संस्कृति-इतिहास से लेकर भारतीय परिदृश्य के विविध पहलुओं, बाल-साहित्य और हिन्दी और अंग्रेज़ी के वार्षिक सन्दर्भ-ग्रंथ– 'भारत' के प्रकाशन के साथ-साथ यह गाँधी-साहित्य का अग्रणी प्रकाशक है। विभाग द्वारा 'आजकल' हिन्दी सहित 'आजकल' उर्दू, हिन्दी और अंग्रेज़ी सहित 13 भारतीय भाषाओं में 'योजना', हिन्दी और अंग्रेज़ी में 'कुरुक्षेत्र' और बच्चों की पत्रिका 'बाल भारती' प्रकाशित की जाती है। 'आजकल' हिन्दी का प्रकाशन 1945 से किया जा रहा है तथा साहित्य और संस्कृति को समर्पित शायद यह ऐसी अकेली पत्रिका है जो लगातार छप रही है। साहित्य की विभिन्न विधाओं- जैसे कहानी, कविता, लेख, साक्षात्कार और पुस्तक एवं विषयगत चर्चाओं तथा सांस्कृतिक गतिविधियों की जानकारी से समृद्ध 'आजकल' पत्रिका का 2020 में अमृत जयंती विशेषांक प्रकाशित हुआ था। साहित्य और संस्कृति को इसी निरंतरता और स्तर के साथ समृद्ध करने का कार्य आगे भी आपके स्नेह के साथ यह पत्रिका करती रहेगी जिसकी परिणति सदस्यों यानी पाठकों की संख्या में वृद्धि के रूप में होगी। कुछ नए स्तम्भ आपको 'आजकल' के इस अंक में और कुछ आगामी अंकों में देखने को मिलेंगे। 'आजकल' का नवम्बर अंक और उसके बाद के आगामी अंक आपका और भी ज़्यादा प्यार पाने में सफल होंगे, ऐसा पूरा विश्वास है!

–डॉ. अनुपमा भटनागर
महानिदेशक, प्रकाशन विभाग

प्रसंगवश



'आजकल' का नवम्बर 2023 का यह अंक इस मासिक की अनवरत तथा अथक 78 वर्ष से अधिक अवधि की सुदीर्घ यात्रा का एक मील का पत्थर साबित होगा। अब जब मुद्रण की आधुनिक तकनीक की बदौलत हिन्दी सहित लगभग सभी भाषाओं के दैनिक समाचार पत्र के सभी पन्नों को रंगीन छापा जाने लगा है, तब एक मासिक पत्रिका के सभी पृष्ठों को विभिन्न रंगों और शेड के साथ पाठकों के लिए प्रस्तुत किए जाने को एक समयानुकूल सार्थक क़दम माना जाएगा। अभी तीन बरस पहले ही जनवरी 2020 में 'आजकल' का अमृत जयंती समारोह मनाया गया था और अपनी रजत, स्वर्ण, हीरक और अमृत वर्षगाँठ के गौरवपूर्ण उत्सवों के पड़ावों के साथ ही ये पड़ाव भी इसकी महान यात्रा में सदैव स्मरण किया जाएगा।

'आजकल' के समर्पित और सम्मानित पाठकों के लिए यह क्षण वैसा ही है, जैसा कि फ़िल्मों के दर्शकों को 1937 में मोती बी. गिडवानी द्वारा निर्देशित 'किसान कन्या' के सिनेमा हॉल में प्रदर्शित किए जाने पर प्रसन्नता का अनुभव हुआ होगा। इस फ़िल्म के ज़रिए भारतीय सिनेमा को रंग मिले और अर्देशिर ईरानी द्वारा निर्मित यह फ़िल्म इतिहास रचकर बन गई भारत की पहली कलर मूवी। इसी प्रकार, चार दशक पहले भारतीय टेलिविज़न दर्शकों के लिए देश में 1982 के एशियाई खेलों के आयोजन के समय दूरदर्शन द्वारा पूर्णतया रंगीन प्रसारण की शुरुआत भी रोमांचपूर्ण रही होगी और शायद कई पाठकों के मन-मस्तिष्क में उस पल की यादें आज भी ताज़ा होंगी।

मई 1945 के 'आजकल' के प्रवेशांक के सम्पादकीय में 'मेंडेट' और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा गया था-पाठकों के रुचि अनुकूल लेख और अन्य सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाएगा, साथ ही पत्रिका में भारत के बारे में उसकी तीव्र गति से उन्नति और अमर संस्कृति सम्बन्धी लेख यानी सामग्री भी देंगे।

अपने पहले ही अंक में पत्रिका ने स्थापित एवं प्रसिद्ध साहित्यकारों की रचनाओं को

तो स्थान दिया ही था लेकिन उभर रहे और स्थापित हो रहे रचनाकारों को भी प्रकाशित किया था, जिनमें कहानीकार विष्णु प्रभाकर का नाटक 'साहस' भी था। जानकारी पूर्ण आलेख, कहानियाँ, कविताएँ, गीत, स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख भी उसका हिस्सा थे। 3 वर्ष के अंतराल पर मार्च 1948 के दूरदृष्टी पूर्ण 'सम्पादकीय' में 'आजकल' के भावी स्वरूप पर भरोसा जताते हुए कहा गया था कि 'आजकल' राष्ट्रीय थाती का साथ कभी नहीं छोड़ेगा; वर्तमान इसको सदैव प्रिय रहेगा और भविष्य के वातायन में झाँकने की बात वह कभी नहीं भुलाएगा। संस्कृति और कला, पुरातत्व और इतिहास, नृशास्त्र और लोकवार्ता, साहित्य और जीवन, सामाजिक जागरण और आर्थिक प्रगति, शस्य श्यामला वसुधा का आशीर्वाद और पावन नदियों का संदेश, राष्ट्र के पशु, पक्षी, पुष्प, वनस्पति और राष्ट्र के अनेक जनपदों की लोक-संस्कृति—यह सब सैदव 'आजकल' को प्रिय रहेंगे। धरती के स्पर्श की कभी अवहेलना नहीं की जाएगी।

प्रारम्भ से ही हिन्दी के प्रतिनिधि और प्रसिद्ध रचनाकार अपनी रचनाओं को 'आजकल' में प्रकाशित करवाने को उत्सुक रहे और 'आजकल' में भी उन्हें हमेशा पूरा मान मिला। स्तरीय और पाठक उपयोगी सामग्री को 'आजकल' में सदैव हाथों-हाथ लिया गया। अनेक बार रचनाकारों से क्षमा-याचना के बाद सामग्री दोबारा लिखवाई गई या फिर कई बार स्तरीय एवं प्रासंगिक न होने पर लौटाई गई। यानी पाठकों की रुचि अनुकूल और हित में सामग्री छापने का प्रयास किया गया और इस सम्बन्ध में कोई समझौता कभी नहीं किया गया। अनेक जाने-माने साहित्यकारों के अलावा भारतीय सूचना सेवा के कई अधिकारियों ने 'आजकल' को कुशल और अनुभवी सम्पादकीय नेतृत्व प्रदान किया और इस मुक़ाम तक पहुँचाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

आशा है, प्रबुद्ध पाठक हमारा यह नवीनतम प्रयास सफल करते हुए अपना स्नेह बनाए रखेंगे। इस अंक से तथा आगामी अंकों को आकार देने वाली सामग्री की योजना अगले पृष्ठ पर दी गई है। सार्थक सुझाव एवं राय का स्वागत रहेगा।

प्रस्तावित सामग्री

'आजकल' को और रोचक, ज्ञानवर्धक और आकर्षक बनाने हेतु कुछ नए स्तम्भ इस प्रकार हैं जिन्हें इस अंक से या आगामी अंकों में शामिल किया जा रहा है-

वातायन : ऋग्वेद के अनुसार- *"आ नो भद्राः क्रतवा यन्तु विश्वतः यानी हमारे लिए सभी ओर से कल्याणकारी विचार आएँ"* को सार्थक करते हुए इसके अंतर्गत विदेशी और भारत की क्षेत्रीय भाषाओं की कहानी, कविताओं, लेखों का अनुवाद का प्रकाशन किया जाएगा।

विविध रंग : इस स्तम्भ में फ़िल्म, थिएटर, ओटीटी, चित्रकला आदि पर सामग्री दी जाएगी। राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों से सम्मानित फ़िल्में, नए नाटक, हस्तकला इत्यादि की सामग्री इसमें दी जाएगी।

यायावर : इस स्तम्भ में ऐसे पर्यटन स्थलों जो ऐतिहासिक–सांस्कृतिक दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण हैं लेकिन जिनके बारे में लोगों को अधिक जानकारी नहीं है, उनके विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी। विख्यात व्यक्तित्व का यात्रा-वृत्तांत भी शामिल करने की योजना है। यह वृत्तांत संस्मरण के रूप में भी हो सकता है।

बीता कल : इसके अन्तर्गत 78 वर्षों से भी अधिक समय से प्रकाशित हो रही 'आजकल' हिन्दी के पुराने अंकों से यानी 'आजकल' अभिलेखागार से सामग्री को पुनर्प्रस्तुत किया जाएगा।

यत्र तत्र अन्यत्र : इसमें सोशल मीडिया के महत्वपूर्ण लेखों, संस्मरणों और कहानियों का साभार प्रकाशन किया जाएगा।

पहली उड़ान : इस स्तम्भ में नवोदित लेखकों-लेखिकाओं की रचनाएँ– प्रकाशित की जाएँगी और उन्हें एक सशक्त मंच दिया जाएगा।

स्पर्धा आजकल : इस स्तम्भ में सिविल सेवा परीक्षा तथा अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में शामिल हिन्दी भाषा के पाठ्यक्रम पर विशेषज्ञों द्वारा तैयार सामग्री प्रस्तुत करने की योजना है ताकि विद्यार्थियों/ शोधार्थियों को इससे ज़्यादा-से-ज़्यादा लाभ पहुँचे।

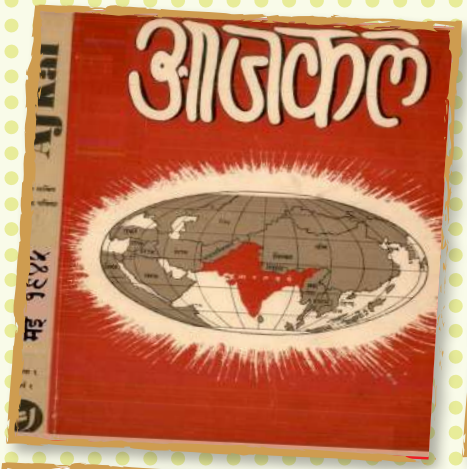
वाणी दर्शन : इस स्तम्भ में दूरदर्शन–आकाशवाणी पर प्रसारित हुई या आगे प्रसारित होने वाली महत्वपूर्ण गतिविधियों, कार्यक्रमों/समाचार कार्यक्रमों को सम्मिलित किए जाने की योजना है।

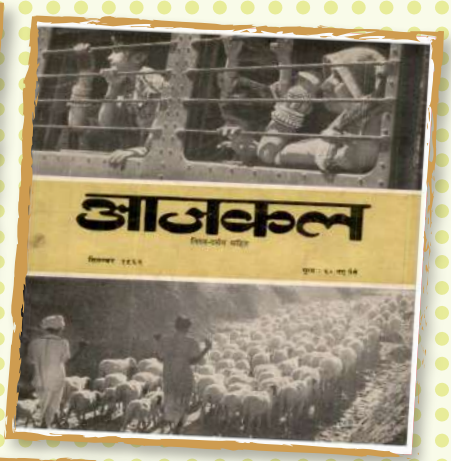
साहित्यिक गतिविधियाँ : इस स्तम्भ के अंतर्गत साहित्यिक गतिविधियों, साहित्यिक कार्यक्रमों और आयोजनों, पुस्तक मेलों, लिट फ़ेस्ट और अंतरराष्ट्रीय पुस्तक मेलों की रिपोर्ट, पुरस्कार वितरण समारोह आदि की रिपोर्ट और समाचार शामिल किए जाएँगे।

पुस्तक समीक्षा : इस स्तम्भ के अंतर्गत साहित्य की स्तरीय और लोकप्रिय पुस्तकों की समीक्षाएँ शामिल की जाएँगी।

प्रकाशन प्रायोजन : इस स्तम्भ में प्रकाशन विभाग की प्रकाशित पुस्तकों की विस्तृत जानकारी और ख़रीदने के लिए लिंक दिए जाएँगे। इसमें विभाग में होने वाली गतिविधियों की रिपोर्ट भी शामिल की जाएगी।

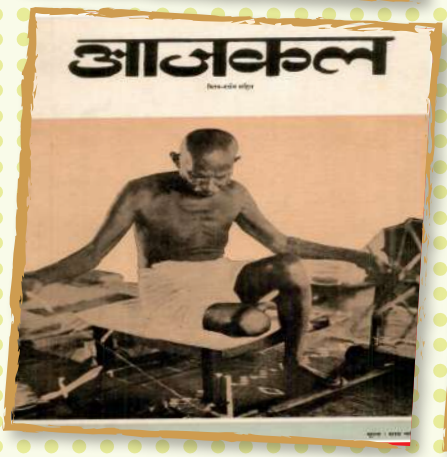
आजकल की अविरल यात्रा



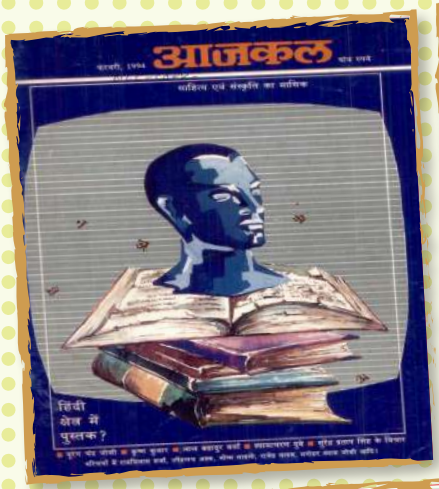


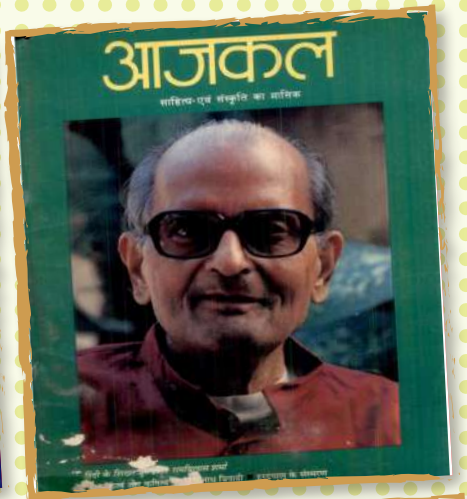




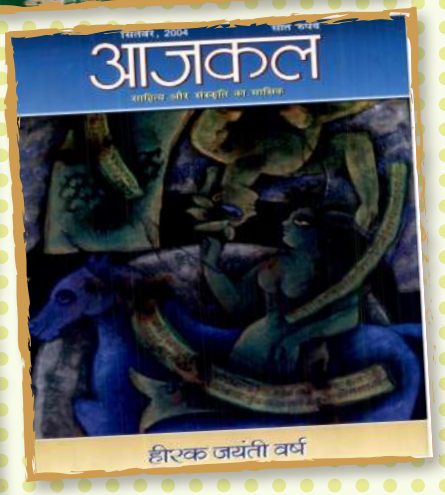




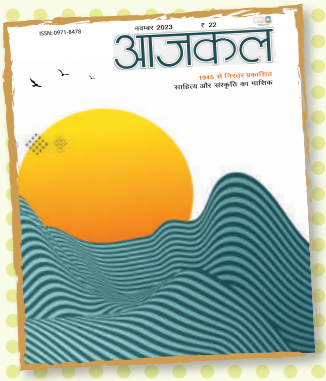

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
हिंदी
क्षेत्र में
पुस्तक?


आजकल
साहित्य-एवं संस्कृति का मासिक


मई, 2004
सात रुपये
आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
हीरक जयंती
वर्ष


सितंबर, 2004
सात रुपये
आजकल
साहित्य और संस्कृति का मासिक
हीरक जयंती वर्ष


ISSN: 0971-8478
जनवरी-फरवरी (संयुक्तांक) 2020
₹ 40
आजकल
1945 से निरंतर प्रकाशित
साहित्य और संस्कृति का मासिक
75
अमृत जयंती विशेषांक


ISSN: 0971-8478
नवम्बर 2023
₹ 22
आजकल
1945 से निरंतर प्रकाशित
साहित्य और संस्कृति का मासिक



परम्परा तथा प्रयोग

बाल-काव्य के क्षेत्र में बाल-ग़ज़ल

हिन्दी बाल-काव्य के अंतर्गत बाल-ग़ज़लें लिखने की परम्परा सुप्रसिद्ध समीक्षक एवं वरिष्ठ साहित्यकार निरंकार देव सेवक से आरम्भ हुई। उन्होंने हिन्दी में बाल-ग़ज़ल की सम्भावनाओं को रेखांकित करते हुए प्रश्न किया- "हिन्दी में बाल ग़ज़लें क्यों न लिखी जाएँ?" बच्चों की भावनाएँ, कल्पनाएँ और विचार भी प्रत्येक शेर में अलग-अलग उसी प्रकार व्यक्त किए जा सकते हैं, जैसे बड़ों के लिए लिखी गई ग़ज़ल में। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि मैंने हिन्दी में बच्चों के लिए ग़ज़ल लिखने का एक नया प्रयोग किया है।



रोहिताश्व अस्थाना
ई-मेल : asthanasulekh@gmail.com

हिन्दी बाल-काव्य के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रचलन रहा है। इनमें बाल-ग़ज़ल को लेकर कवियों ने अपने-अपने ढंग से प्रयोग किए हैं।

हिन्दी बाल-ग़ज़ल से हमारा आशय उस ग़ज़ल से है जिसके अंतर्गत उर्दू-फ़ारसी ग़ज़ल की शिल्पगत मान्यताओं को स्वीकारते हुए बच्चों के मन में उठने वाली भावनाओं एवं कल्पनाओं को अभिव्यक्त किया जाता है। वास्तव में ग़ज़ल का अपना अलग तेवर और शिल्प-सौष्ठव होता है। अपनी संक्षिप्तता एवं सरलता के कारण हिन्दी बाल-काव्य के क्षेत्र में बाल-ग़ज़ल बहुत चर्चित रही।

ग़ज़ल में दो पंक्तियों वाले पाँच से सात या उससे भी अधिक शेर कहे जाते हैं। ग़ज़ल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों के अंत का शब्द या शब्द-समूह एक ही होता है। प्रत्येक शेर की अंतिम पंक्ति के अंत में भी इसका प्रयोग होता है। इसे 'रदीफ़' कहते हैं। 'रदीफ़' के पहले के शब्द में तुक होता है जिसका निर्वाह ग़ज़ल की पहली, दूसरी पंक्ति तथा प्रत्येक शेर की अंतिम पंक्ति में होता है। इसे 'क़ाफ़िया' कहते हैं। ग़ज़ल के पहले शेर को 'मतला' तथा अंतिम शेर को 'मक़ता' कहते हैं।

कभी-कभी मक़ता में कवि अपने उपनाम का उल्लेख भी कर देता है परन्तु प्रायः बाल-ग़ज़लों में यह शर्त लागू नहीं होती है। हिन्दी कवियों ने उर्दू-फ़ारसी के लिए प्रचलित बहरों के स्थान पर हिन्दी छंदों का भी प्रयोग किया है।

हिन्दी बाल-काव्य के अंतर्गत बाल ग़ज़लें लिखने की परम्परा सुप्रसिद्ध समीक्षक एवं वरिष्ठ साहित्यकार निरंकार देव सेवक से आरम्भ हुई। उन्होंने हिन्दी में बाल-ग़ज़ल की सम्भावनाओं को रेखांकित करते हुए प्रश्न किया, "हिन्दी में बाल-ग़ज़लें क्यों न लिखी जाएँ?" बच्चों की भावनाएँ, कल्पनाएँ और विचार भी प्रत्येक शेर में अलग-अलग उसी प्रकार व्यक्त किए जा सकते हैं, जैसे बड़ों के लिए लिखी गई ग़ज़ल में। वे स्वयं स्वीकारते हैं कि मैंने हिन्दी में बच्चों के लिए ग़ज़ल लिखने का एक नया प्रयोग किया है। हिन्दी या उर्दू में अभी तक ग़ज़लें बच्चों के लिए नहीं लिखी गई हैं, पर विश्वास है कि यदि लिखी जाएँ तो बच्चे उन्हें अवश्य अपनाएँगे।

इस प्रकार हिन्दी में बाल-ग़ज़ल के प्रथम प्रयोक्ता निरंकार देव सेवक ही ठहरते हैं। उनकी एक बाल-ग़ज़ल यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

'हमको लड्डू, कचौरी गरम चाहिए
और सोने को बिस्तर नरम चाहिए

पढ़ने-लिखने को कहती तो है माँ मगर
पहले कॉपी-किताबें-क़लम चाहिए

एक चींटी के बच्चे ने मुझसे कहा
नन्हे-मुन्नों पे करना रहम चाहिए

तोप काग़ज़ की माँ ने बनाकर जो दी
इसमें रख छोड़ने को तो बम चाहिए

पापा बोले कि बेटा बड़े अब हुए
करना शैतानियाँ तुमको कम चाहिए।'

सेवकजी की कुछ अन्य बाल-ग़ज़लें भी काफ़ी चर्चित रही हैं। इनमें दो बाल-ग़ज़लें तो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यथा- 'धूप जाड़े की है सारे घर में खिली' और 'बेटी की ग़ज़ल'।

सेवकजी के समकालीन कवि एवं बाल-साहित्यकार सरस्वती कुमार दीपक की बाल-ग़ज़लों का संग्रह 'नन्हीं-मुन्नी ग़ज़लें' शीर्षक से वर्ष 1982 में शकुन प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। उनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर दृष्टव्य हैं-

'उड़ना मुझे सिखा दे पंछी
दुनिया मुझे दिखा दे पंछी

कैसे पर फैलाकर उड़ता
इसकी रीत बता दे पंछी

मीठी बोली बोल-बोलकर
आ जा मन बहला दे पंछी

चन्दा मामा की नगरी की
डगरी तो दिखला दे पंछी।'

वरिष्ठ बाल-साहित्यकार लाला जगदलपुरी के बाल-काव्य में बाल-ग़ज़ल के कुछ सफल प्रयोग मिलते हैं। शिल्प की कसौटी पर खरी उतरने वाली एक बाल-

ग़ज़ल के कुछ शेर यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं-

'घर-आँगन बुहारती झाड़ू
गंदगी से उबारती झाड़ू

कचरों को हरा-हरा देती
स्वच्छता को उभारती झाड़ू

धन्य वह हाथ जो इसे लेता
उसकी जय-जय उचारती झाड़ू।'

समकालीन हिन्दी बाल-ग़ज़ल के क्षेत्र में वरिष्ठ कवि बालक राम नागर के प्रयोग भी उल्लेखनीय हैं। उनकी एक बाल-ग़ज़ल तो आकाशवाणी से संगीतबद्ध रूप में ख़ूब प्रसारित होती रही है जिसका मतला इस प्रकार है-

'आप हँसते जाइए, हमको हँसाते जाइए
प्यार से इक ख़ूबसूरत घर बसाते जाइए।'

बाल-ग़ज़लों के क्षेत्र में दामोदर अग्रवाल एवं हरीश निगम के प्रयोग भी सराहनीय हैं।

अश्वनी कुमार पाठक ने भी बच्चों के लिए कुछ अच्छी ग़ज़लें लिखी हैं। माँ की महिमा के बारे में उनकी एक बाल-ग़ज़ल तो काफ़ी चर्चित रही है-

'तू चुप-चुप क्यों रोई माँ
नहीं रात भर सोई माँ

देख रहा हूँ कई दिनों से
रहती खोई-खोई माँ

भूखी रहकर तूने रांधी
सबके लिए रसोई माँ

तूने सब कुछ लुटा दिया पर
तेरे साथ न कोई माँ।'

उक्त ग़ज़ल का अंतिम शेर नई पीढ़ी के समक्ष तमाम झकझोर देने वाले प्रश्न छोड़ जाता है।

उर्दू-हिन्दी के सशक्त ग़ज़लकार ज़हीर कुरेशी ने भी बच्चों के लिए कुछ अच्छी ग़ज़लें लिखी हैं, जिनमें से एक निम्नवत है-

'चल दिए बरसात के मेहमान जाड़ा आ गया/ धूप की सजने लगी दुकान, जाड़ा आ गया

बोल कम्बल और रज़ाई के भले लगने लगे/ तीर-सा चुभने लगा स्नान, जाड़ा आ गया

घर, गली, बाज़ार में बिखरी सुबह की धूप-सी/ गर्म स्वेटर, कोट की मुस्कान, जाड़ा आ गया।'

यूँ तो गौरी शंकर विनम्र ने बहुत-सी बाल-ग़ज़लें लिखी हैं परन्तु छोटी बहर में लिखी गई उनकी एक बाल-ग़ज़ल बच्चों द्वारा ख़ूब सराही गई-

'अक्कड़ बक्कड़ / एक था लक्कड़
रूपा तितली / महा घुमक्कड़
मधुमक्खी ने / मारा लप्पड़
अभी सुधर जा / ओ रे फक्कड़
छोड़ बोलना / भाषा अक्खड़।'

इसी प्रसंग में प्रतिष्ठित बाल

साहित्यकार रामनिवास 'मानवजी' का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने बाल-काव्य में बाल-ग़ज़लों को भी अपनाया है। पर्यावरण संरक्षण के सन्दर्भ में उनकी एक शिक्षाप्रद बाल-ग़ज़ल प्रस्तुत है-

'जीवन का सामान पेड़ हैं
विधना का वरदान पेड़ हैं

सब रौनक़ हरियाली इनसे
सचमुच जग की शान पेड़ हैं

पत्थर खाकर भी फल देते,
कितने धीरजवान पेड़ हैं।'

वरिष्ठ बाल-साहित्यकार अजय प्रसून के बाल-काव्य में बाल-ग़ज़लों के सफल प्रयोग मिलते हैं। बहर, रदीफ़, क़ाफ़िया, नए बिम्बों एवं उपमाओं की दृष्टि से बच्चों के लिए लिखी गई एक मुकम्मल बाल-ग़ज़ल के कुछ शेर उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं-

'पाठशाला में छत की जगह टीन है
इसकी हालत बड़ी यार संगीन है

पानी बरसे टपाटप तो ऐसा लगे
खोपड़ी पर बजे तक धिना धीन है

वर्षा में खेलने निकले, ओले पड़े
चाँद अपनी हुई एक दो तीन है

एक छोटा-सा घर प्रभु भिखारी को दो
सिर छिपाए कहाँ, सोच में दीन है।'

बच्चों के वरिष्ठ कवि घमंडीलाल अग्रवाल की 51 बाल-ग़ज़लों का संकलन 'बाल मन की रोचक ग़ज़लें' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। विभिन्न सन्दर्भ में 'पापा' पर लिखी गई उनकी एक बाल-ग़ज़ल के कुछ शेर उल्लेखनीय हैं-

'हलवा-पूरी गरमा-गरम खिलाओ पापा/ केक, टॉफ़ियाँ, बिस्कुट, फ़ौरन लाओ पापा

सिर्फ़ किताबें हमें कोर्स की नहीं सुहातीं
बाल पत्रिकाएँ भी तो पढ़वाओ पापा

दुनिया वाले उदाहरण दे जहाँ ज़रूरी
जग में इतने अच्छे अब कहलाओ पापा।'

इसी प्रकार साहित्यकार राकेश चक्र के बाल-काव्य में बाल-ग़ज़लों के सफल प्रयोग मिलते हैं। कूड़े से काम की चीज़ें चुनने वाले बच्चों के बारे में लिखी गई उनकी एक ग़ज़ल को उद्धत करना यहाँ प्रासंगिक होगा-

'कूड़े-सा जीवन जीते हैं
कितनी द्वेष-घृणा पीते हैं

कपड़े गुदड़ मैले-कुचैले
हँस-हँसकर फिर भी जीते हैं
लगता बचपन कूड़ाघर है
फटे वसन सारे सीते हैं।'

हिन्दी बाल-काव्य के क्षेत्र में शिल्पगत नव प्रयोगों के लिए सूर्यकुमार जाने जाते हैं। बाल परिवेश से सम्बद्ध उनकी एक बाल-ग़ज़ल के कुछ शेर यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं-

'पान चबाती मेरी दादी

मुझको भाती मेरी दादी

बिना दाँत-मुँह चला-चलाकर
खाना खाती मेरी दादी

रोज़ शाम को कथा-कहानी
ख़ूब सुनाती मेरी दादी

ख़र्राटे भरने लगती है
जब सो जाती मेरी दादी।'

हिन्दी बाल-साहित्य के मर्मज्ञ कवि एवं लेखक सुरेन्द्र विक्रम की बादलों पर लिखी एक बाल-ग़ज़ल तो 1981 के आस-पास से ही ख़ूब चर्चा में रही है-

'अकस्मात तुम बादल भैया कहाँ चले?/ प्यासी रह गई मेरी गैया कहाँ चले?

नन्हे-मुन्नों की जिज्ञासा देखो तो
हाथों में काग़ज़ की नैया कहाँ चले?

बिना बुझाए प्यास अरे इस धरती की
ठुमक-ठुमककर ता ता थैया कहाँ चले?'

इसी प्रकार बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी अशोक अंजुम की बाल परिवेश एवं खिलंदड़ेपन से जुड़ी हुई एक बाल ग़ज़ल यहाँ प्रस्तुत है-

'बंटी भैया ख़ूब छकाए, हा हा हा
मूर्ख दिवस पर मूर्ख बनाए हा हा हा

भैया सुनो तुम्हें बाबूजी बुला रहे
बंटी दौड़े हम मुस्काए हा हा हा

भरी शरारत हमने, उनका नाम लिया
बापू बंटी पर चिल्लाए हा, हा, हा

जब-जब बंटी रूठे हमने टॉफ़ी दी,
छका-छका हर बार मनाए हा हा हा।'

शशि जोशी द्वारा माँ पर लिखी गई उनकी एक बाल-ग़ज़ल के कुछ शेर बच्चों के लिए प्रेरक एवं मार्मिक बन पड़े हैं-

'माँ है इसीलिए घर-घर-सा लगता है
वरना सब कुछ बिखरा-बिखरा लगता है

खिलती हैं दीवारें प्यार की ख़ुशबू से
यह सारा घर महका-महका लगता है

जाने क्या जादू है माँ की गोद में
सर रख लो तो कितना हल्का लगता है

ये सूरज ये चाँद-सितारे इंद्रधनुष
माँ के आगे सब कुछ फीका लगता है।'

इन सबके अतिरिक्त अखिलेश श्रीवास्तव चमन, अहद प्रकाश, याद राम शर्मा, श्याम बेबस, संत कुमार बाजपेई, राजकुमार जैन राजन, रमेश राज, नागेश पाण्डेय 'संजय' आदि के बाल-काव्य में बाल-ग़ज़लों के सफल प्रयोग मिलते हैं। इस प्रकार निरंकार देव सेवक से आरम्भ हुई बाल-ग़ज़लों की यह परम्परा आज भी जारी है। निश्चय ही नवीनता, उपयोगिता, रोचकता एवं बाल ग्राहता की दृष्टि से बाल-काव्य के क्षेत्र में बाल-ग़ज़लों का भविष्य उज्ज्वल है। ❑



जन्मशताब्दी वर्ष

वीरेन्द्र नारायण
बहुमुखी प्रतिभा के धनी

हिन्दी साहित्य में शायद ही कोई ऐसा रंगकर्मी हुआ हो जिसने न केवल आज़ादी की लड़ाई में जेल में समय गुज़ारा हो बल्कि खुद अभिनय भी किया हो। नाटकों का निर्देशन भी किया तथा नाट्य आलोचना भी लिखी हो और नाटकों का अनुवाद भी किया हो, नाटक भी लिखें हों लेकिन वीरेन्द्र नारायण ऐसी ही बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उन्होंने उपन्यास, कहानियाँ तथा कविताएँ लिखीं और सितार भी बजाया।



अरविंद कुमार
ई-मेल : streedarpan123@gmail.com

भागलपुर में 16 नवम्बर, 1923 को जन्मे वीरेन्द्र नारायण मोहन राकेश से उम्र में दो साल बड़े थे और इब्राहिम अल्काज़ी से एक साल। हबीब तनवीर उनसे मात्र दो माह ही बड़े थे। इस तरह आज़ादी के बाद हिन्दी में जो रंगकर्मी और नाटककार सामने आए उनमें वह प्रमुख थे।

राष्ट्रीय आंदोलन में जेल जाने वाले कई लेखक थे। वे सब गाँधीजी से प्रभावित थे और उनके नेतृव में जेल भी गए। 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, सुभद्रा कुमारी चौहान और फणीश्वरनाथ रेणु की तरह ही वीरेन्द्र नारायण भी जेल गए थे। उन्होंने तीन साल तक भागलपुर जेल में अपना समय बिताया। उस समय उनके ही वार्ड में हिन्दी के रेणु के अलावा बंगाल के प्रख्यात लेखक सतीनाथ भादुड़ी भी थे। रेणुजी तो एक साल के बाद बीमारी के कारण जेल से रिहा हो गए और सतीनाथ भादुड़ी दो साल के बाद जेल से रिहा हुए लेकिन वीरेन्द्रजी तीन साल बाद जेल से आए। उसके बाद वे सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गए और जयप्रकाश नारायण के अख़बार 'जनता' में काम करने लगे जिसमें

हिन्दी के प्रख्यात समाजवादी लेखक और पत्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी सम्पादक थे।

वीरेन्द्रजी की पत्नी ने एक संस्मरण में लिखा है कि जयप्रकाश नारायण और बेनीपुरीजी मेरे पति को अपने बेटे के समान मानते थे। बेनीपुरीजी ने ही उनकी शादी सन् 1948 में करवाई थी। उनकी पत्नी हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत शिवपूजन सहाय की बड़ी पुत्री थीं और शादी से पहले वह गाँव में ही रहती थीं।

एक बार जब शिवपूजन सहाय ने बेनीपुरीजी से अपनी बेटी की शादी के लिए योग्य वर सुझाने की बात की तो बेनीपुरीजी ने कहा, "लड़का तो हम लोगों के आस-पास ही है। वह अपना वीरेन्द्र नारायण है न!" उनके प्रस्ताव पर वीरेन्द्रजी मान गए और सादे ढंग से शादी की।



पत्नी सरोज नारायण के साथ

बेनीपुरीजी ने लिखा है कि उन्होंने यह शादी करवा कर एक तरह से अपनी गुरु दक्षिणा शिवपूजनजी को दी थी क्योंकि बेनीपुरीजी उनका बड़ा सम्मान करते थे और उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे।

वीरेन्द्रजी समाजवादी विचारों के युवक थे। बेनीपुरीजी और जे.पी. की सोहबत में उनके व्यक्तित्व का विकास हुआ। जब जे.पी. ने 'जनता' अख़बार निकाला तो बेनीपुरीजी उसके सम्पादक थे। वीरेन्द्रजी उसके सहायक सम्पादक बनाए गए। तब उन्हें 150 रुपये मिलते थे। दरअसल शादी के बाद कुछ दिन भागलपुर में रहने के बाद वीरेन्द्रजी पटना चले आए और साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता से जुड़ गए।

'जनता' के बाद वे 1950 में 'नई धारा' में बेनीपुरीजी के साथ काम करने लगे। वह पत्रिका प्रेमचन्द युगीन लेखक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की थी। दरअसल राजाजी का शिवपूजनजी, बेनीपुरीजी, दिनकरजी आदि से नित्य का सम्बन्ध था।

इस तरह उन्हें लिखने की प्रेरणा इन लेखकों से मिली। वीरेन्द्रजी को नाटकों का शौक था। वे भागलपुर जेल में ही नाटक लिखने लगे थे। उन्होंने 1954 में पटना में ही बेनीपुरीजी के प्रसिद्ध नाटक 'अम्बपाली' में अरुण ध्वज का मुख्य अभिनय किया था। दिल्ली के ऑल इंडिया ड्रामा फ़ेस्टिवल में जब यह नाटक आया था तो उसे प्रथम पुरस्कार मिला और उस नाटक को देखने राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद भी आए थे। राजेन्द्र बाबू का शिवपूजन सहाय, राजाजी और बेनीपुरीजी से बड़ा ही आत्मीय सम्बन्ध था।

'नई धारा' के बाद वीरेन्द्र नारायण लंदन चले गए। उन्हें ड्रामा में एक्टिंग करने का बहुत शौक था। उन्होंने ब्रिटिश रंगमंच के प्रथम अभिनेता सर लॉरेंस ओलिवर से पत्राचार किया और उसके बाद वहाँ लंदन में ड्रामेटिक अकेडमी ऑफ़ आर्ट एण्ड म्यूज़िक में दाख़िला लिया।

वीरेन्द्रजी की पत्नी ने एक अन्य संस्मरण में लिखा है, "मेरे ससुर और बड़े ससुर वकालत करते थे और बड़े ससुर का तो भागलपुर में बड़ा नाम था। घर की आर्थिक स्थिति भी उस ज़माने के हिसाब से ठीक ही थी। हम लोगों का रहन-सहन एकदम साधारण लेकिन ख़ुशहाल था। लगभग साल-डेढ़ साल के बाद मैं पटना आ गई जहाँ ये सोशलिस्ट पार्टी के अख़बार 'जनता' में सहायक सम्पादक थे। लंगरटोली मुहल्ले के बिहारी साव लेन के एक मकान में जिसका किराया 30 रुपये था, उस वक़्त इनकी 125 रुपये तनख़्वाह थी। मुश्किल तो होती थी लेकिन कम में भी संतुष्ट रहना तो मैंने बाबूजी से ही सीखा था और इनके जैसा सुयोग्य वर पाकर खुश थी। मेरी बड़ी बेटी ममता का जन्म तो भागलपुर में हुआ था लेकिन उसके बाद तीन बेटे विजय, जय और संजय और एक बेटी प्रीति का जन्म वहीं लंगरटोली के उसी मकान में हुआ था। बाद में ये 'राष्ट्रवाणी' अख़बार में और फिर बेनीपुरीजी के साथ ही 'नई धारा' में काम करने लगे थे। बाबूजी के कारण ही बेनीपुरीजी हमेशा इनको 'बेटाजी' ही कहते थे और साहित्यिक सभी लोग इनको भी बहुत प्यार और इज़्ज़त देते थे। सब लोग बराबर घर पर भी आते रहते थे। बेनीपुरीजी तो हम लोगों को बच्चों के साथ बराबर अपने घर पर खाने पर बुलाते थे और बाबूजी से कम मुझको, इनको या बच्चों को प्यार नहीं करते थे।"



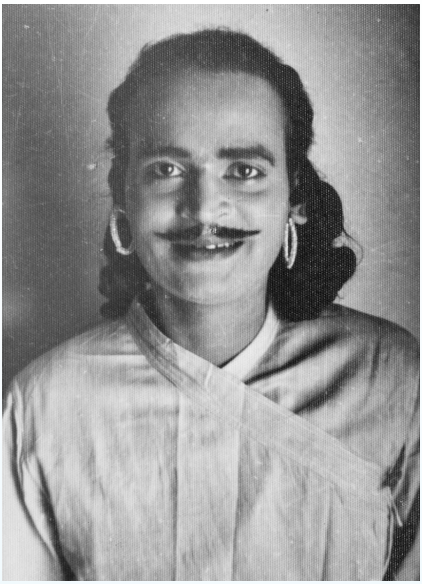
स्वाधीनता सेनानी, रंगकर्मी और नाट्य आलोचक वीरेन्द्र नारायण (16 नवम्बर, 1923 - 16 नवम्बर 2003) जन्मशताब्दी वर्ष

वीरेन्द्रजी का जीवन सारे अभावों के बीच भी बहुत सुखमय था। उनका अधिकतर समय लिखने-पढ़ने, सितार बजाने के रियाज़ और बच्चों के साथ खेलने में बीतता था। साहित्य-सम्मेलन में कला केन्द्र में रोज़ शाम को इनका जाना ज़रूरी था। शिवजी साहित्य सम्मेलन में ही रहते थे। परिषद् कार्यालय भी वहीं था। ये अपना सितार लेकर श्यामनारायण बाबू की रातभर चलने वाली संगीत की बैठकों में जाया करते थे और देर रात लौटते थे। उसी बीच जब शिवपूजनजी को टी.बी. हो गई थी तो उनको ज़बर्दस्ती अपने घर में ले आए थे और दवा-इलाज पर मुस्तैदी रखते थे। बच्चों की वजह से बाबूजी नहीं आना चाहते थे तो इन्होंने बच्चों को कुछ दिनों के लिए भागलपुर भेज दिया था। उसी समय से इनके मन में इंग्लैंड जाकर ड्रामा की ट्रेनिंग लेने की धुन सवार हो गई। इन्होंने 'नई धारा' से

इस्तीफ़ा दे दिया और इंग्लैंड जाने की तैयारी में लग गए। इनका इरादा इतना पक्का था कि इन्होंने घर में जो थोड़ा-बहुत फ़र्नीचर था, उसको भी बेच दिया, और कुछ पैसा जो इसके लिए बचाते आ रहे थे बस उससे किसी तरह टिकट वग़ैरह का इंतज़ाम करके चले गए। वहाँ एक होटल में बैरे का काम करते हुए किसी तरह अपना ख़र्च चलाते थे।

शिवजी ने बिहार राष्ट्र भाषा परिषद का कुछ काम लंदन में कराकर इनके लिए कुछ पैसों का इंतज़ाम भी कराया था। तभी सदल मिश्र की रचनावली निकली जो हिन्दी के प्रथम गद्य-लेखक थे। उनकी चीज़ें, दस्तावेज़ सब अंग्रेज़ लेकर चले गए थे। वे अपना सितार वहाँ भी ले गए थे और वहाँ भी इनका रियाज़ चलता रहा। दिल्ली में साँग एण्ड ड्रामा डिवीज़न में नौकरी मिल गई। जगदीशचन्द्र माथुर उस वक़्त उस मन्त्रालय में सचिव थे। वे जब पटना में थे तभी से इनको बहुत मानते थे और उनकी मदद इनको बराबर मिलती रही। देर रात तक लिखने-पढ़ने की इनकी आदत शुरू से थी। इन्होंने अपनी ज़िन्दगी बहुत शान से जी।

वीरेन्द्रजी की बेटी प्रीति लाल का कहना है, "पिताजी ने 1954 में ही अपना पहला उपन्यास लिखा था जिसकी भूमिका अज्ञेय ने लिखी थी। पिताजी तेजी बच्चन के साथ ड्रामा करते थे। बच्चनजी ने जब शेक्सपियर के 'मैकबेथ' का अनुवाद किया तो उस नाटक का निर्देशन मेरे पिताजी ने किया। वे चेखव के प्रशंसक थे। 'चेरी के बग़ीचे' और 'तीन बहनें' का भी अनुवाद किया था। श्रीराम सेंटर पर 1977 में मंचन भी हुआ था। इससे पहले लक्ष्मी नारायण लाल के 'मिस्टर अभिमन्यु' का भी निर्देशन किया था जिसमें दिनेश ठाकुर ने काम किया था। देवेन्द्र राज अंकुर और महेश आनंद जब एम.ए. के छात्र थे, पिताजी से मिले थे। 1960 में 'कल्पना' में पिताजी के प्रसाद के नाटकों पर लेख छपे थे और 'सूरदास' नामक नाटक छपा था। पिताजी ने विद्यापति, शरतचन्द्र, बापू पर भी नाटक लिखे थे। इलाहाबाद में कुम्भ में लाइट एण्ड साउंड का कार्यक्रम कर 'रामचरित मानस' भी दिखाया था। दिल्ली में 1977 में पिताजी ने तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रमण्यिम भारती पर भी इस तरह का शो किया था जो दक्षिण भारत में लोकप्रिय हुआ था।"



'अम्बपाली' नाटक में अरुणध्वज की भूमिका में वीरेन्द्र नारायण

वीरेन्द्रजी ने क़रीब 12 छोटे-बड़े नाटक, एकांकी लिखे पर आत्म-प्रचार से दूर छपने-छपाने को

लेकर उनके मन में अरुचि रही। इसलिए उनके बहुत सारे नाटक छपे ही नहीं। उनके निधन के बाद जब पाँच खण्डों में उनकी रचनावली छपी तब लोगों को पता चला कि उन्होंने इतना कुछ लिखा था। वे किसी गुट में भी नहीं रहे।

जब इब्राहिम अल्काज़ी ने 1963 में पुराने क़िले में धर्मवीर भारती का नाटक 'अंधा युग' किया था तो वीरेन्द्रजी ने उसकी आलोचनात्मक समीक्षा लिखी थी जिससे अल्काज़ी से उनके सम्बन्ध थोड़े ख़राब हो गए। वीरेन्द्रजी एक आदर्शवादी मूल्य वाले लेखक थे, निर्भीक और साहसी भी। आज़ादी की लड़ाई के सेनानी थे। इसलिए कभी नाम के लोभ में नहीं रहे। जीवनभर वे अपने ससुर शिवपूजनजी की तरह काम करते रहे।

सिद्धांतवादी इतने कि तेजी बच्चन के साथ काम करते हुए अमिताभ बच्चन को अभिनय का अवसर नहीं दिया। अमिताभ युवक थे। तेजीजी चाहती थीं कि 'मैकबेथ' नाटक में अमिताभ को भी रोल मिले पर एक निर्देशक के रूप में उन्होंने अमिताभ को रोल नहीं दिया जिससे तेजीजी नाराज़ भी हो गईं और उन्होंने इसकी शिकायत बच्चनजी से की। इस पर बच्चनजी ने तेजी को समझाया और कहा कि इस नाटक का निर्देशन वीरेन्द्र कर रहे हैं तो वे ही तय करेंगे कि किसको क्या रोल मिलेगा। अंत में तेजीजी सहमत हो गईं। अमिताभ को मंच पर पर्दा खींचने और गिराने की ज़िम्मेदारी दी गई। वीरेन्द्रजी ने खुद ये बातें रचनावली की भूमिका में लिखी है।

इसी तरह दफ़्तर में उनका विवाद हुआ और 1969 में उनका तबादला भोपाल कर दिया गया। वीरेन्द्रजी भोपाल जाने को तैयार नहीं हुए और वे लम्बे अवकाश पर भेज दिए गए। बाद में बीच-बचाव कर सरकार ने एक नया पद उपनिदेशक बनाया और वे गाँधी जन्मशती आयोजन के प्रभारी बनाए गए। इस तरह 1969 में उन्होंने 'बापू के साए में' नाटक लिखा जो उस साल कई बार खेला गया। वह नाटक सरकार के गाँधी जन्मशती समारोह का एक हिस्सा था।

वीरेन्द्रजी ने 1960 में नेत्रहीनों (दिव्यांगों) पर एक नाटक 'सूरदास' भी लिखा था। उस समय कम-से-कम हिन्दी में इन पर कोई नाटक नहीं लिखा गया था। उनके नाटक 'कितने चौराहे' के भी कई शो उस ज़माने में हुए थे। उन्होंने रंगकर्म पर हिन्दी में एक किताब लिखी तब तक छात्रों के लिए रंगकर्म पर कोई किताब नहीं थी। वह किताब आज भी एक पाठ्य-पुस्तक की तरह है। उन्होंने प्रसाद के नाटकों पर हिन्दी में उस ज़माने में लिखा। स्तानिस्लाव्स्की पर चेखव के नाटकों पर हिन्दी में पहला लेख उनका ही होगा। 16 नवम्बर को वीरेन्द्रजी जन्म हुआ था और उसी तारीख़ को वह 80 वर्ष की उम्र में यह दुनिया छोड़कर चले गए।

एक अभिनेता, एक निर्देशक, एक नाट्य आलोचक, एक कवि, एक कहानीकार, एक उपन्यासकार, एक अनुवादक, एक सितारवादक सभी थे पर वे सांसारिक यश से दूर रहे जबकि अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, नगेन्द्र, बच्चन, जगदीशचन्द्र माथुर सबसे उनका आत्मीय परिचय रहा पर वीरेन्द्रजी शिवपूजन सहाय की तरह पर्दे के पीछे रहने वाले व्यक्ति थे। ❑

वरिष्ठ साहित्यकार रमेश कुंतल मेघ से बातचीत

रमेश कुंतल मेघ हिन्दी साहित्य में वरिष्ठ साहित्यकार एवं समालोचक के रूप में लब्धप्रतिष्ठ रहे हैं। उन्होंने परम्परागत हिन्दी समीक्षा के प्रतिमान तोड़कर पहली बार हिन्दी समीक्षा का कैनवास विस्तृत किया है। चूँकि मेघजी ने हिन्दी आलोचना को अंतरानुशासनिक बनाया है। उन्होंने साहित्य को मनोविज्ञान, दर्शन, समाजशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र के साथ जोड़कर देखने पर बल दिया है।



पुरुषोत्तम कुंदे
ई-मेल : prkunde@gmail.com

रमेश कुंतल मेघ
चित्रकला मेरा मूलाधार

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित मेघजी की सौन्दर्यशास्त्र के सम्बन्ध में की गई स्थापनाओं को बिना पढ़े सौन्दर्यशास्त्र में कोई स्थापना नहीं हो सकती है। मेघजी ने कला, संस्कृति, इतिहास सरीखे बहुविध विषयों पर अपने सुदीर्घ चिन्तन से हिन्दी पाठकों का पथ-प्रदर्शन किया है। उन्होंने कला को देखने के अनेक दृष्टिकोण दिए हैं। यह साक्षात्कार अप्रैल, 2018 में पंचकुला, हरियाणा में लिया गया था। एक सितम्बर, 2023 को रमेश कुंतल मेघ का देहावसान हुआ था। उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत है उनसे पुरुषोत्तम कुंदे की बातचीत के अंश-

प्रश्न : सौन्दर्यशास्त्र के लिए आपने सौन्दर्यबोधशास्त्र का अवधारणात्मक प्रयोग किया है, इसके सम्बन्ध में क्या कहेंगे?

उत्तर : इसलिए है कि ये बुनियादी तौर पर संवेदनशीलता है। सौन्दर्यशास्त्र कहने से यह बात प्रकट नहीं होती। बोध मैंने इसलिए जोड़ा कि ये पता लग जाए कि ये विशिष्ट ज्ञान का पैटर्न है। इसलिए मैंने बोध जोड़ा है। अकेले सौन्दर्यशास्त्र से बात नहीं बन रही थी।

आपकी दृष्टि से किसी कलाकृति या काव्यकृति का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन करने के लिए कौन-कौन से तत्त्व सम्मुख रखने चाहिए?

इसके लिए मैंने एक संघाय बनाया है। उसी के आधार पर मैंने समग्र काम किया है। आपने मेरी पुस्तक में देखा भी होगा। यह मेरा कई वर्षों का चिन्तन है।

तो फिर सौन्दर्यशास्त्र और तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र को अलग करके देखना होगा या फिर सौन्दर्यशास्त्र ही तुलनात्मक है?

आप इसे ज्ञान के लिए अलग-अलग करते हैं लेकिन सौन्दर्यशास्त्र बुनियादी तौर पर ही तुलनात्मक है जो कि भाषा और निर्भाषा को जोड़ रहा है। तुलना हुई है या नहीं? भाषा साहित्य है तो निर्भाषाएँ अन्य कलाएँ हैं।

आपने अपनी किताब में सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना का ज़िक्र किया है। इस अवधारणा के बारे में क्या कहेंगे?

सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना अगर हम मार्क करते हैं तो आपको शब्दार्थ से परे जाना पड़ेगा। दूसरा आपको बिम्ब और पैटर्न की ओर आना पड़ेगा जबकि शाब्दिक में शब्द शक्ति की ओर आना पड़ेगा। तो सौन्दर्यशास्त्रीय आलोचना न कहते हुए आप आशंसा कहिए। अब चित्र में, मूर्ति या संगीत में क्या आलोचना करेंगे! यहाँ आप विश्लेषण करेंगे। तो साहित्य की आलोचना वहाँ नहीं चलेगी। यहाँ बुनियादी रूप से चाहिए विश्लेषण या आशंसा। यहाँ निरूपण होगा जबकि साहित्य में निर्वचन होगा। एक ओर निर्वचन में शब्दार्थ है और निरूपण में बिम्ब का जादू है। तो यह अंतर आप कर लीजिए।



रमेश कुंतल मेघ
(1 जून, 1931-1 सितम्बर, 2023)

आपने कहा है कि सौन्दर्यबोध-शास्त्र की भाषा शीर्षयात्री होती है, यह भाषा दूरारुढ़ा है। क्या इसे अधिक स्पष्ट करेंगे?

इसे सौन्दर्यशास्त्र में 'मेटा' भाषा कहा जाता है। इसे 'आदि' भाषा कहते हैं। वह भाषा जो शब्दार्थ से परे जा रही है। दूसरी बात, जिसकी इकाइयाँ साहित्यिक भाषा की नहीं है। जैसाकि मैंने बताया, इसकी भाषा मेटाफ़र से आगे जाकर बिम्ब का जादू है। प्रतिरूप है, सांस्कृतिक पैटर्न है। इस तरह मैंने आप से कहा यह बिलकुल अलग है। इसमें निरूपण ज़्यादा है। अगर आप आलोचना देखेंगे तो चित्रकला और संगीत में क्या आलोचना करेंगे?

आजकल हिन्दी में विविध विमर्शों का प्रचलन है। जैसे दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श, आदिवासी-विमर्श आदि। हर एक विमर्श स्वतन्त्र सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमानों की बात कह रहा है। आप क्या कहेंगे?

एक तरह से सौन्दर्यशास्त्र एक भावना ही नहीं रहा, अब वह लतीफ़ा बन गया है। अब कहीं भी इस शब्द को लगा दें। पहले आप

आलोचना कहते थे। अब आप सौन्दर्य कहने लगे हैं। इसे निरूपण और आशंसा के साथ जोड़ना होगा। तब शब्दार्थ और शब्दशक्तियाँ काम नहीं करेंगी। फिर आपको, हम लोग जिसे सौन्दर्य में कहते हैं 'जीना ओढ़ाना, कपड़े पहना देना। रंगमहावर। अब चित्रों में किसी तरह सजाएँगे यह देह। अपना तो नखशिख हो गया है। ये अंतर कर लीजिए आप। अजंता कला में जीना-ओढ़ाना है। रंगमहावर है, रंग लगा दिया है, काजल, तिलक लगा दिया है।

आपने गुणात्मक मूल्य या प्रकृत मूल्य को ही सौन्दर्य माना है। इसके बारे में क्या कहना चाहेंगे?

इस सम्बन्ध में मैंने छोटी-सी किताब ही लिखी है 60-70 पृष्ठों की। 'सौन्दर्य मूल्य और मूल्यांकन' पढ़ी होगी आपने। उसमें मैंने यह सब दिया है।

जी, पढ़ी है सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन और काव्यशास्त्रीय अध्ययन दोनों के अध्ययन में काफ़ी संभ्रम हमारे यहाँ रहा है। दोनों में अगर अंतर करना है, तो कैसे कर सकते हैं?

काव्यशास्त्रीय अध्ययन की परम्परा बहुत लम्बी है। अब यह कहा जाए कि हमारा सारा चिन्तन काव्यशास्त्रीय रहा है। सौन्दर्यशास्त्रीय चिन्तन की जो पहली नींव पड़ी है वह कश्मीरी सौन्दर्यशास्त्र में आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त ने शुरू किया है। उनकी इकाइयों में आप देखेंगे वही जादू या चमत्कार है। अभिनव गुप्त ने यही बात कही है। काव्यशास्त्रीय अध्ययन अधिक व्याकरणिक है क्योंकि सौन्दर्यबोधशास्त्रीय अध्ययन निरूपणात्मक है, आशंसात्मक है और इसमें प्रत्यक्षीकरण ज़्यादा है।

तो फिर हम रसानुभूति और सौन्दर्यानुभूति में अंतर कैसे कर सकते हैं?

यह अलग हो जाएँगे। रसानुभूति एक ढाँचे से विकसित होती है। विभाव, अनुभाव, संचारी भाव। रसानुभूति में यह परिपक्व होते हैं। सौन्दर्यानुभूति रेखा, भाव, बिम्ब मुद्रा, भंगिमा से विकसित होती है। दोनों की इकाइयाँ अलग-अलग होती हैं। इसलिए रस की इकाइयाँ काव्यशास्त्र से जुड़ी हैं और सौन्दर्यशास्त्र की अलग है।

सौन्दर्यबोधशास्त्र के लिए आपने तुलनात्मक सौन्दर्यबोधशास्त्र भी कहा है, क्या कहना चाहेंगे?

मेरी समकालीन स्थापना यह है कि अब केवल ज्ञान जो है, अब साहित्य को केवल शब्द शक्तियों से ही नहीं जोड़ना होगा। साहित्य को अब सामाजिक-संस्कृति से जोड़ना पड़ेगा। तो सौन्दर्यशास्त्र इसके लिए पहली सीढ़ी होगी। जो कि अर्थ से परे जाएगी। अर्थ का अतिक्रमण करेगी। यह आप मानकर चलें कि अर्थ से आगे जाएँ। साहित्य मूलरूप की तरह है, सौन्दर्य है। Arche और Meta ये दोनों महत्वपूर्ण सूत्र हैं, जो कि मुझे समझ में आया है।

यह भी धारणा है कि 'Aesthetics is a Meta criticism' इसके बारे में क्या कहेंगे?

बिलकुल, आप भी लागू करिए। शमशेर बहादुर सिंह जहाँ कविता में चित्रकला का प्रयोग करते हैं। वह मेटा-विश्लेषण है, जो शब्द नहीं कह पाते हैं वह कहता है अर्थात् जो मुद्राओं और भंगिमाओं से कहें।

तो फिर काव्य में हम भंगिमा कैसे देख सकते हैं?

संचारी क्या है? अभी आप नाम कुछ भी दें। काव्यशास्त्र में संचारी कहिए।

सौन्दर्यशास्त्र में भंगिमा कहिए। मानव की दशाएँ तो नहीं बदल सकतीं, चाहे कोई भी ज्ञान आ जाए। कम्प्यूटर भी आ जाए तो नहीं बदल पाएँगे।

पाश्चात्य देशों में सौन्दर्यशास्त्र के बारे में काफ़ी कुछ लिखा जाता है और आज भी लिखा जा रहा है। यहाँ तक कि Neuro Aesthetics की बात हो रही है लेकिन हमारे यहाँ ऐसा नहीं दिखता है। अतः यहाँ सौन्दर्यशास्त्र का भविष्य क्या होगा? आपका क्या चिन्तन है?

(मुस्कुराते हुए) ये तो आप की ज़िम्मेदारी है। मेरी कहाँ है?

फिर भी...

हिन्दी में जब अन्य ज्ञानात्मक अनुशासन वाले काम करना शुरू करेंगे तब सौन्दर्यशास्त्र आगे बढ़ेगा लेकिन जो केवल काव्यशास्त्र की ही धुरी में जुड़े रहेंगे, कुछ नहीं आएगा। आप देखिए कि सबसे बड़ा आंदोलन प्रगतिशील रहा लेकिन कुछ नया नहीं दे पाया। चिन्तन की दुनिया बहुत बड़ी है।

भारतीय भाषाओं में यथा- बांग्ला, मराठी, हिन्दी में सौन्दर्यशास्त्र पर काफ़ी कुछ लिखा गया है लेकिन ऐसा लगता है कि सौन्दर्यशास्त्र के बारे में आज भी हमारे यहाँ काफ़ी संभ्रम और मतभिन्नता है। आप क्या सोचते हैं?

बहुत ही स्पष्ट है। मैं चित्रकार रहा हूँ। जो मेरी ताक़त रही या जो मेरी कुँजी रही, वह चित्रकला है। अगर चित्रकला नहीं होती तो मेरी भी स्थिति वही होती। अगर आप संगीतज्ञ हैं, तो करें किशोरी अमोणकर (जो दुर्भाग्यवश हाल ही में गुज़र गईं) की कला पर काम। ऐसे लोग जब आएँगे हिन्दी में तकनीकी के लोग आएँगे, संगीतज्ञ आएँगे, इंजीनियर आएँगे और जब वो काम करेंगे तब वास्तविक सौन्दर्यशास्त्र हिन्दी में विकसित होगा। नहीं तो किताबों पर किताबें आएँगी और कुछ नहीं निकलेगा। जब तक तुलनात्मक नया ज्ञान, ढाँचा या आकार नहीं बनेगा, तब तक सौन्दर्यशास्त्र आगे नहीं बढ़ेगा। मेरा मूलाधार चित्रकला ही रहा है।

मतलब सौन्दर्यशास्त्र में काम करना है तो अन्य कलाओं को दरकिनार नहीं कर सकते?

हाँ! यह शर्त है। तभी तो सौन्दर्यशास्त्र आगे बढ़ेगा। नहीं तो काव्यशास्त्र में ही वह दब जाएगा। अगर इसे काव्यशास्त्रोत्तीर्ण बनाना है, तो यह ज़रूरी है। ❑

प्रकाशन विभाग

परीक्षा तैयारी

के लिए

हमारा संग्रह



व अन्य कई...

रोज़गार संबंधी जानकारी और महत्वपूर्ण समसामयिक विषयों पर गहन विश्लेषण के लिए हर सप्ताह पढ़ें रोज़गार समाचार

सब्सक्राइब करें : www.employmentnews.gov.in

खरीदने के लिए : www.publicationsdivision.nic.in

संपर्क करें:

पुस्तकों के लिए : businesswng@gmail.com 01124365609

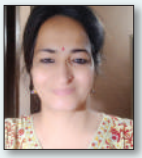
पत्रिकाओं के लिए: pdjucir@gmail.com 01124367453

सूचना भवन, सीजीओ काम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली - 110003

मन्नू भण्डारी की पुण्य तिथि 15 नवम्बर पर विशेष

बचपन से ही दोस्त की तरह रहीं माँ : रचना यादव

हमारे भारतीय समाज में माँ और बेटी का रिश्ता, स्त्रियों के बाक़ी रिश्तों से बहुत ख़ास माना गया है। मन्नू भण्डारी की सुपुत्री और प्रसिद्ध कथक कलाकार तथा 'हंस' पत्रिका की मैनेजिंग डायरेक्टर रचना यादव अपनी माँ प्रसिद्ध कथाकार मन्नू भण्डारी और अपने पिता प्रसिद्ध कथाकार और नई कहानी के सशक्त हस्ताक्षर राजेन्द्र यादव की तरह ही विशिष्ट व्यक्तित्व की धनी हैं। रचना यादव का अपनी माँ के साथ बेहद आत्मीय और प्रगाढ़ रिश्ता रहा है।



विपिन चौधरी

ई-मेल : choudharyvipin131@gmail.com

मन्नू भण्डारी की पुण्यतिथि के अवसर पर 'आजकल' पत्रिका को दिए इस साक्षात्कार में रचना यादव ने अपनी माँ के साथ अपने जीवन के कई ख़ास अनुभवों को साझा किया है। प्रस्तुत है उनसे बातचीत के प्रमुख अंश–

प्रश्न : मन्नूजी के साथ पाठक जानते हैं कि आपका बहुत प्रगाढ़ रिश्ता रहा है। जीवन के किस पड़ाव में आपका अपनी माँ के साथ एक सहेली जैसा रिश्ता बना?

उत्तर : मेरी माँ बचपन से ही मेरी दोस्त जैसी रहीं। वे हमेशा एक अच्छी माँ रहीं। मैं उनसे अपनी सभी बातें साझा करती थी। मुझे याद है जब मैं बारह या तेरह साल की थी जब मेरे जन्मदिन की पार्टी में माँ ने मुझे कहा कि तुम अब बड़ी और समझदार हो रही हो। पार्टी में सिर्फ़ अपनी सहेलियों को ही नहीं, अपने दोस्तों को भी बुलाओ। उनके साथ भी बातचीत करना सीखो। मैं गर्ल्स स्कूल में पढ़ती थी तो इतने लड़कों से जान-पहचान नहीं थी पर अजितजी और निर्मलाजी का बेटा मेरे बचपन के दोस्त हुआ करते थे। उस ज़माने में अपनी बेटी से इस

तरह की बातें सिर्फ़ एक उदार माँ ही कह सकती थी।

जब आप युवा हुईं और स्कूल पास करने के बाद कॉलेज में जाने लगीं तब उनकी क्या प्रतिक्रिया रही?

जब कॉलेज में दाख़िला लेने का समय आया तो उन्होंने कहा, "तुमने गर्ल्स स्कूल में पढ़ाई की है। तुम कोएजुकेशन कॉलेज में दाख़िला लो। इसीलिए, उन्होंने मुझे मिरांडा हाउस में दाख़िला नहीं लेने दिया क्योंकि वे ख़ुद इस कॉलेज में पढ़ाती थीं।

क्या मन्नूजी एक माँ के रूप में बहुत नियंत्रक माँ थीं?

नहीं, बिल्कुल नहीं। वे हमेशा से एक उदार माँ थीं। उन्हें मैं कुछ भी कह सकती थी। वे मेरी सभी बातें बड़े ध्यान और रुचि के साथ सुनती थीं और मेरी हर समस्या का बड़े मनोयोग से समाधान करती थीं।



मन्नू भण्डारी
(3 अप्रैल, 1931 - 15 नवम्बर, 2021)

क्या कभी आपको ऐसा लगता था कि आपका अपनी माँ से जैसा रिश्ता है वैसा आपकी सहेलियों का अपनी माँओं के साथ नहीं है। और चूँकि आपकी माँ एक कामकाजी महिला थीं जिसका अवसर उस समय कम ही महिलाओं को मिला हुआ था?

हाँ, मैंने अपनी माँ को बचपन से ही नौकरी करते हुए देखा था। इसीलिए मुझे बचपन से ही अपनी माँ के कामकाजी होने की आदत थी। बचपन से ही हमारे घर की व्यवस्था ऐसी थी कि सुबह उन्हें सवेरे कॉलेज जाना है। मैं सवेरे ही स्कूल चली जाती थी और जब मैं स्कूल से लौटकर घर आती तो वे मुझे घर पर ही मिलती थीं। माँ का सामाजिक दायरा बहुत बड़ा था। पापा की तो बहुत ही ज़्यादा सोशल लाइफ़ थी। माँ फिर भी इस मामले में थोड़ा नियंत्रण करती थीं। मगर फिर भी हफ़्ते में तीन बार तो मम्मी का भी बाहर जाने का कार्यक्रम बनता ही था। घर में भी लगातार मेहमानों के आने का सिलसिला चलता ही रहता। उनमें से अधिकतर लोगों को मैं बहुत बचपन से ही जानती थी जिनमें से प्रभा दीक्षित, अर्चना वर्मा, कृष्णा शर्मा, निर्मलाजी को मैंने बहुत बचपन से ही अपने घर में आते देखा था। ये सभी बहुत हिम्मती और प्रबुद्ध स्त्रियाँ थीं।

उस समय कभी आपको लगा कि ये सभी स्त्रियाँ अपने समय की बहुत प्रबुद्ध और अपने क्षेत्र में बहुत नामचीन स्त्रियाँ हैं?

जब हम बच्चे होते हैं, कई चीज़ों, कई

लोगों और कई रिश्तों का महत्व समझ में नहीं आता मगर जब हम बड़े होते हैं तो धीरे-धीरे चीज़ें समझ में आने लगती हैं। उस समय मुझे लगता था सभी स्त्रियाँ मेरी माँ और मेरी माँ की परिचित महिलाओं जैसी ही मज़बूत व्यक्तित्व की होती हैं। इसका असर भी मुझ पर बहुत पड़ा।

बचपन से ही मेरी माँ ने मुझे यह समझाया था कि तुम किसी के दबाव में कभी नहीं आओगी। उनके व्यवहार और दूसरी बातों में यह अनुकूलन होता चला गया क्योंकि मैं और मम्मी एक-दूसरे से ख़ूब बातें किया करते थे। वे अक्सर यह भी कहा करती थीं कि अपने कैरियर की बात को हमेशा ध्यान में रखो। उनका कहना था कि शादी करके घर पर मत बैठ जाना। बच्चों का पालन-पोषण करने में ही अपना जीवन मत ख़र्च कर देना। अपने कैरियर पर भी ध्यान देना। तुम्हें एक गृहिणी का जीवन बिल्कुल नहीं जीना। इसी वजह से मेरा अनुकूलन इस तरह का हो गया था कि मेरे जिन दोस्तों की माँएँ गृहणियाँ थीं, उनको लेकर मुझे कभी अच्छा नहीं लगता और वर्किंग वुमन को लेकर मैं हमेशा उत्साहित रही। इसीलिए मुझे अपनी माँ का वर्किंग वुमन होना हमेशा से अच्छा लगता था।



मन्नू भण्डारी की सुपुत्री और प्रसिद्ध कथक कलाकार रचना यादव

आपकी माँ न सिर्फ़ वर्किंग वुमन थीं बल्कि देश की एक बड़ी लेखिका भी थीं। उनकी कहानी 'यही सच' हैं पर 1974 में निर्देशक बासु चटर्जी ने फ़िल्म बनाई थी।

हाँ, फ़िल्म बनने का समय मुझे याद है। मुझे अपनी माँ के लेखन से होने वाली हलचलों का अहसास तो था मगर इतना कुछ विशिष्ट नहीं लगता था कि अरे मेरी माँ इतनी बड़ी हस्ती हैं। मेरी माँ की लोकप्रियता का पैमाना दूसरा था। उनकी लोकप्रियता का दायरा मेरे दोस्तों, मेरे परिचितों के दायरे से कहीं अलग था क्योंकि मेरे दोस्त साहित्यिक नहीं थे। स्कूल में जो मेरे दोस्त हुआ करते थे, वे साहित्य में रुचि नहीं रखते थे मगर चूँकि मेरी मम्मी की कहानी पाठ्यक्रम में थी। उनकी जीवनी हमें याद करनी पड़ती थी। इसीलिए मुझे अपने ख़ास होने का अहसास ज़रूर होता था। जब मैंने सबसे पहले अपने दोस्तों को बताया कि इस कहानी की लेखिका मन्नू मेरी माँ हैं तब ज़रूर मुझे थोड़ा अटेन्शन मिला था। मेरी हिन्दी की अध्यापिका हमेशा मुझे कहती थीं कि अपनी मम्मी से हमें मिलाओ। मेरी माँ को स्कूल में आमंत्रित भी किया गया था। यह सब मुझे बहुत अच्छा लगता था मगर मेरे दोस्तों ने

किसी भी साहित्यकार का नाम नहीं सुना था। मुझे लगता था, इन साहित्यकारों की अपनी अलग-सी दुनिया है बल्कि जब मम्मी की कहानी पर फ़िल्म बनी तब भी फ़िल्म के निर्देशक बासु चटर्जी और अभिनेता अमोल पालेकर को मेरे दोस्त नहीं जानते थे।

मुझे लगता था कि मेरी मम्मी और पापा अपनी साहित्यिक दुनिया में लोकप्रिय हैं जो एक ऐसा संसार है जिसे साहित्य से बाहर की दुनिया नहीं जानती। इसीलिए मुझे अपने साहित्यिक माता-पिता की बेटी होने का बहुत ख़ास अहसास कभी नहीं हुआ। मगर कुछ प्रसंग ज़रूर मुझे उत्साहित करते थे जैसे मुझे याद है जब मैं एक बार बस में जा रही थी, मेरे हाथ में एक पारदर्शी फ़ोल्डर था जिसमें मेरा बायोडाटा था, इसमें मेरे माता-पिता का नाम लिखा था। मैंने देखा कि बस में मेरे आस-पास बैठी लड़कियाँ फुसफुसाकर एक-दूसरे को बता रही थीं कि देखो यह मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव की बेटी हैं। इसके अलावा जब किसी दूसरे शहर में आयोजित होने वाले कार्यक्रमों से लौटकर मम्मी बताया करती थीं कि स्टेशन पर उन्हें लेने बहुत सारे लोग आए थे। उस समय लेखकों को बहुत महत्व दिया जाता था। लेखकों को लेकर लोगों के मन में बहुत जिज्ञासा होती थी।

मगर उस समय उनकी उन बातों का इतना महत्व नहीं समझ में आता था जितना आज समझ में आता है। बाबूजी का साहित्य में योगदान के बारे में तो मुझे 'हंस' पत्रिका के साथ जुड़ने के बाद ही समझ में आया कि मेरे पिता राजेन्द्र यादव का साहित्यिक योगदान किस स्तर का है!

अपने जीवन के अंतिम समय में मन्नूजी आपके साथ रहने लगी थीं। कृपया उनके जीवन के उस समय के कुछ प्रसंगों को पाठकों के साथ साझा करें, कहा जाता है कि एक समय के बाद बुज़ुर्ग लोग बच्चों जैसे हो जाते हैं। मन्नूजी के जीवन के उत्तरार्ध के बारे में कुछ बताएँ।

इस उम्र में भी वे डाँट दिया करती थीं। मेरे कुछ समझाने पर कह दिया करती थीं, "मुझे सब मालूम है। मुझे मत समझाओ।" वे हमेशा आत्मनिर्भर रहीं। किसी दूसरे पर निर्भर रहना उन्हें कभी पसन्द नहीं आया। इसीलिए मैं उन्हें अपने साथ उस समय लेकर आई जब लगा कि वे अकेले नहीं रह पाएँगी।

मन्नूजी के व्यक्तित्व और उनकी अदम्य इच्छाशक्ति के बारे में बताएँ। उनके व्यक्तित्व की कौन-सी ऐसी चीज़ है जिसे आप अपने भीतर महसूस करती हैं?

कुछ चीज़ों में उनकी इच्छा शक्ति बहुत मज़बूत थी मगर कुछ चीज़ों में वे बहुत कमज़ोर पड़ जाती थीं।

मम्मी किसी के साथ छल-कपट नहीं कर सकती थीं। मैं भी ऐसा ही स्वभाव चाहती हूँ। मम्मी हर उस चीज़ के लिए बहुत ख़ास महत्व दिया करती थीं जिस पर कई लोग ध्यान नहीं देते हैं। जैसे वे समय की बहुत पाबन्द थीं। किसी को जो समय दिया है हर हाल में उस समय का वे अनुसरण



करती थीं। मैं भी अपनी मम्मी की तरह इस बात का ध्यान रखती हूँ कि समय का ख़ास ख़्याल रखूँ। मुझे लगता है कि यह गुण मुझमें अपनी मम्मी से आया है।

मम्मी का स्वभाव बेहद पारदर्शी था। वह जो भीतर से थीं, वही बाहर से भी थीं मगर मुझमें मम्मी का यह गुण नहीं है। मैं कई चीज़ें अपने भीतर जज़्ब कर लेती हूँ, उन्हें प्रदर्शित नहीं कर पाती।

मम्मी जब भी खुश होती थीं तो वह ज़ोर से हँसती थीं और जब नाराज़ होती थीं तो साफ़ तौर पर दर्शा देती थीं कि मैं इस बात पर नाराज़ हूँ। ग़ुस्सा होती थीं तो चिल्ला दिया करती थीं। ऐसा निश्चल और पारदर्शी स्वभाव था उनका।

एक बेटी के तौर पर उनके व्यक्तित्व की कौन-सी चीज़ें आपको पसन्द थीं और कौन-सी नापसन्द?

मम्मी कई चीज़ें एक साथ कर सकती थीं। एक बेहतरीन प्राध्यापक तो वे थीं हीं। उनकी छात्राएँ उनके पीछे पागल रहा करती थीं। जब तक वे जीवित रहीं, उनकी कोलकाता और दिल्ली की अनेकों छात्राएँ उनके सम्पर्क में रहीं। जब मम्मी खाना बनाती थीं तो बहुत शानदार खाना बनाती थीं। रोज़ खाना बनाना उन्हें पसन्द नहीं था मगर जब हमारे घर पर डिनर पार्टियाँ होती थीं तो वो कई व्यंजन बना डालती थीं।

उनके भीतर ग़ज़ब की सौन्दर्य अभिरुचि थी जो मुझे लगता है उनसे ही मिली है। शक्ति नगर में हमारा दो कमरों का एक छोटा-सा फ़्लैट हुआ करता था मगर उन्होंने उसे बड़ी अच्छी तरह से और बहुत सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया था। मैं साठ के दशक की बात कर रही हूँ। उस समय मम्मी उस तरह के जूट के पर्दे लाई थीं जो आजकल बहुत फ़ैशन में हैं। उन्होंने न जाने कहाँ से जूट ख़रीदा, उसे डाई करवाया। उसे ब्लॉक प्रिन्ट करवाया फिर नीचे बॉर्डर को फ़ैब्रिक पेंट से रंगा।

वे कलकत्ता से स्टूडियो पॉटरी लाई थीं। इरेगुलर टाइप के डिज़ाइन वाली प्लेटें जो बहुत शानदार लगती थीं और उस समय के हिसाब से बहुत आधुनिक भी थीं। वे बहुत सारी अलग-अलग तरह की मिठाई बनाती थीं और उन पर ख़ास तरह से वर्क़ आदि लगाकर सजावट भी करती थीं। घर में

अगर बड़ी पार्टी का आयोजन होता था तो वे अपने कॉलेज के बाग़ीचे से कई तरह के फूल लाकर उन्हें घर में कई जगह सजाती थीं। इंटीरियर डेकोरेशन के गुण भी मुझे अपनी मम्मी से ही मिले।

इसके अलावा मम्मी बुनाई में भी निपुण थीं। हमारे यहाँ दिवाली में कभी बाहर से मिठाई नहीं आती थी। उस समय गैस भी नहीं होता था। वे स्टोव में ही कई व्यंजन बना डालती थीं। मुझे याद है ख़स्ता कचौरियाँ, सेव, नमकपारे, नारियल की मिठाई मम्मी खूब बनाती थीं। एक बार उन्होंने कलकत्ता में कहीं परवल की मिठाई खाई थी जो उन्हें ख़ूब पसन्द आई थी। दिल्ली आकर उन्होंने छेना भरकर उसे बनाया था। ऐसे ही मम्मी की निपुणता के कई प्रसंग हैं जो हमेशा मेरी स्मृतियों में रहते हैं।

क्या मन्नूजी आपको खाना बनाने या घर के दूसरे कामों में दिलचस्पी दिखाने को कहा करती थीं? कोई ऐसी ख़ास चीज़ जिसे अपनाने को मन्नूजी कहा करती हों।

नहीं, शादी से पहले मैंने कभी खाना नहीं बनाया था और खुद मम्मी को भी रोज़ खाना बनाना पसन्द नहीं था। इसीलिए उन्होंने मुझे भी कभी इस तरह प्रोत्साहित नहीं किया।

मम्मी को नृत्य का शौक था। वे अच्छा नृत्य करती थीं। संगीत में भी उनकी रुचि थी। साफ़-सफ़ाई से उनका बहुत लगाव था। घर में ज़रा भी धूल नहीं होनी चाहिए, चादर एकदम साफ़ होनी चाहिए, ऐसा हमेशा उनका आग्रह होता था।

मन्नूजी से जुड़ी कोई और बात इस समय जो आपको ध्यान आ रही है, उसके बारे में बताएँ।

मुझे याद है बचपन से ही मम्मी मेरी पढ़ाई का ख़ास ध्यान रखती थीं। वे न सिर्फ़ पढ़ाती थीं बल्कि एक-एक चीज़ मॉनिटर करती थीं जैसे परीक्षा के दिनों में। फिर जब मैं परीक्षा देकर आती थी तो सारे प्रश्नों का उत्तर मुझसे पूछती। ख़ासकर गणित विषय के बारे में।

उन्होंने मुझे आत्मनिर्भर होना सिखाया, मुझे याद है वे मुझे अकेले जाने के लिए प्रोत्साहित करती थीं और कलकत्ता जाने के लिए ट्रेन में बिठा दिया करती थीं। बस में किसी को मेरा ख़याल रखने को कह देती थीं। उनका कहना था कि अपना काम ख़ुद करो, दूसरों पर निर्भर मत रहो। मुझे अपनी माँ से अपने जीवन को अनुशासित करने में बहुत मदद मिली। आज जब उन्हें याद करती हूँ तो मन में एक अनोखा अहसास भर जाता है। बड़े होने पर ही आपको कई चीज़ों के बारे में पता चलता है। जब आप उन सभी यादों के साथ जीवन जीने लगते हैं तब ही आपको उन चीज़ों की अहमियत का पता चलता है। जब वे चीज़ें आपके जीवन में रहती हैं तब आपको इसका अहसास नहीं होता जैसे ही वे चीज़ें आपके जीवन से चली जाती हैं तब आपको उन चीज़ों के महत्व का पता चलता है। ❑



दायरा

"चलो निकलो, बाहर की खुली हवा में घूमें। किसी मन्दिर में बैठकर समय तो बिता सकते हैं।" मालती का यह प्रस्ताव सुहास गुप्ता को भी रास आ गया। दोनों तैयार होकर बाहर गली में आ गए। उनके निकलते ही मकान-मालिक की नज़र उन पर पड़ गई। तब उन्होंने मालती से कहा, "मकान-मालिक दयारामजी ने हमें जाते हुए देख लिया है।"

उनको इस शहर में आए 15 दिन हो गए मगर दफ़्तर के सहयोगी के अलावा किसी से परिचय नहीं हुआ। जिस किराए के मकान में वे रहते हैं, मकान-मालिक के अलावा किसी से परिचय नहीं हुआ। मकान-मालिक भी ज़्यादा बात नहीं करते हैं परन्तु उनकी गतिविधियों पर पूरी तरह नज़र रखते हैं। वे कहाँ जाते हैं, उनके घर कौन आता है। वैसे भी मकान-मालिक ने मकान देते हुए स्पष्ट कह दिया था कि फ़ालतू आदमी यहाँ नहीं आना चाहिए। ज़्यादा शोर-शराबा भी नहीं होना चाहिए। अतः उसने आस-पास वालों से भी परिचय करना उचित नहीं समझा। दरअसल मकान-मालिक जिनका नाम दयाराम है मगर दया उनमें नहीं है। जो बोलना होता है मुँहफट बोल देते हैं। यही कारण है कि वह नए शहर में अपने को ढाल नहीं सका।

उनका नाम सुहास गुप्ता है जो एस.डी.ओ. कार्यालय में उच्च श्रेणी लिपिक के पद पर कार्यरत हैं। वे मूलतः उज्जैन के रहने वाले हैं। अभी तक वहीं कार्यरत थे मगर 15 दिन पहले शिकायत बतौर उनका प्रशासकीय स्थानान्तरण निम्न ज़िले के मनासा में कर दिया गया। उन पर गाज गिरी, अपने वाले आदमी को यहाँ लाना था। अतः जगह ख़ाली करने के लिए उनका प्रशासनिक स्थानान्तरण करना ज़रूरी था। वे शासकीय मुलाज़िम थे जो बेहद ईमानदारी से काम करते थे क्योंकि उनकी जगह उन्हें भ्रष्ट और बेईमान बिठाना चाहते थे ताकि उल्टे-सीधे काम उनके रुके नहीं। यही कारण था कि उनका प्रशासकीय स्थानान्तरण करना पड़ा।

वे दोनों ही पति-पत्नी हैं। 20 साल पहले ऑपरेशन



रमेश मनोहरा

ई-मेल : manoharramesh192@gmail.com

से पुत्र हुआ था मगर 24 घंटे भी वो जीवित न रह सका। डॉक्टर से भी पत्नी का ऑपरेशन करते समय बच्चेदानी की नस कट गई। तब कह दिया अब उनकी पत्नी माँ नहीं बन सकती हैं। तब से दोनों पति-पत्नी अकेले हैं।

यह थी सुहास गुप्ता की संक्षिप्त कहानी। आज रविवार की छुट्टी है। दिन उनका नहीं कट रहा है। छोटे-से क़स्बानुमा शहर में जाएँ तो कहाँ जाएँ! मकान-मालिक अपने किराएदार से ज़्यादा बात करना पसन्द नहीं करते हैं। उनकी यह सोच है कि मकान-मालिक और किराएदार के बीच की दूरी बनी रहे। ऐसे वातावरण में उन्होंने अपने-आप को ढाल लिया। कार्यरत दिन तो दफ़्तर में बीत जाता है मगर छुट्टी वाला दिन बहुत भारी लगने लगता है। एक क़ैदी की तरह घर में बन्द रहना पड़ता है। समय बिताने के लिए पत्नी के साथ गपशप कर लेते हैं मगर वह भी कितनी देर!

जिस शहर में जन्म हुआ। बचपन बीता, शिक्षा ग्रहण की और नौकरी के 22 वर्ष गुज़ारे, उस शहर की रग-रग से परिचित था। दफ़्तर की छुट्टियाँ कब ख़त्म हो जाती थीं, उसे पता भी नहीं चलता था। उसका अपना जाना-पहचाना शहर था। कहीं भी गाड़ी लेकर निकल जाता था। फिर दोस्तों, परिचितों और रिश्तेदारों का पूरा एक कुनबा था। उनके बीच रहकर सारा समय बीत जाता था परन्तु इस नई जगह उनका मन नहीं लग रहा है। नौकरी की मजबूरी के कारण रहना है। पत्नी मालती भी दिनभर बोर हो जाती हैं। वह तो दफ़्तर चले जाते हैं। रह जाती हैं मालती अकेली, कभी-कभी उनका समय काटे नहीं कटता। तब वो झुँझला उठती हैं। शाम को दफ़्तर से जब लौटकर सुहास गुप्ता घर आते, तब शिकायत करती हुई कहती हैं, "अच्छा स्थानान्तरण हुआ, ये स्थानान्तरण नहीं एक तरह से जेल हुई।"

"हाँ मालती, प्रशासनिक स्थानान्तरण तो जेल की तरह ही होता है।" सुहास गुप्ता ने भी समर्थन करते हुए कहा।

"आपकी ईमानदारी ने ही तो जेल की सज़ा दिलवाई है, खुद खाते, दूसरों को भी खिलाते तो आज आपका स्थानान्तरण नहीं होता।" जले पर नमक छिड़कती हुई, जब मालती ने यह बात कही, तब सुहास गुप्ता ने इस बात का जवाब नहीं दिया, बल्कि आश्वस्त करते हुए बोले, "मालती ये दिन भी कट जाएँगे। जितनी जल्दी हो सके, कहीं और तबादला करवा लेंगे ताकि अपडाउन किया जा सके।" सुहास गुप्ता भले ही मालती को आश्वस्त कर दें मगर जानते हैं, स्थानान्तरण बिना ले-देकर नहीं होगा। अधिकारियों को रिश्वत का ख़ून जो लगा हुआ है, इसके सिवाय कोई रास्ता भी नहीं है।

बहुत लम्बी चुप्पी के बाद मालती झल्लाकर बोलीं, "देखो, मैं तो बोर हो गई, घर के क़ैदख़ाने में बैठे-बैठे।"

"बोर तो मैं भी हो गया मालती", पक्ष लेते हुए सुहास गुप्ता बोले।

"कहीं बाहर चलें?" मालती ने प्रस्ताव रखा।

"कहाँ चला जाए?" सुहास गुप्ता ने सवाल उठाया। "आधा घंटे में तो सारा क़स्बा घूम कर आ जाएँगे।"

"चलो निकलो, बाहर की खुली हवा में घूमें। किसी मन्दिर में बैठकर समय तो बिता सकते हैं।" मालती का यह प्रस्ताव सुहास गुप्ता को भी रास आ गया। दोनों तैयार होकर बाहर गली में आ गए। उनके निकलते ही मकान-मालिक की नज़र उन पर पड़ गई। तब उन्होंने मालती से कहा, "मकान-मालिक दयारामजी ने हमें जाते हुए देख लिया है।"

"उनसे डरे मेरी जूती", मालती भी

झल्लाकर बोलीं, "बड़ा अजीब सनकी दिमाग़ का है।"

"नाम दयाराम ज़रूर है मगर दया नहीं है उनमें।" सुहास गुप्ता ने भी मालती का पक्ष लेते हुए कहा। अभी वे गली के नुक्कड़ पर भी नहीं पहुँचे थे कि ओटले पर बैठे एक सज्जन 65-70 वर्ष की उम्र के होंगे, उन्होंने आवाज़ दी, "भाई साहब, ज़रा इधर आना।" वे दोनों उनके पास चले गए, उनसे अगली बात की प्रतीक्षा करने लगे।

"क्या आप इस शहर में नए आए हो?" उन सज्जन ने सवाल किया।

"हाँ," संक्षिप्त उत्तर देकर सुहास गुप्ता उनके अगले प्रश्न का इंतज़ार करने लगे।

"मैं रोज़ आपको इधर गुज़रते हुए देखता हूँ।" उस सज्जन ने इतना ही कहा।

"जी मैं दफ़्तर जाता हूँ।" उन्होंने उत्तर दिया।

"कौन से पद पर।" उन सज्जन ने जब अगला प्रश्न पूछा, तब सुहास गुप्ता मन-ही-मन झल्ला उठे, अतः ज़रा तल्ख़ आवाज़ में बोले, "लेखापाल पद पर।"

"क्या अभी नए आए हैं?" उन सज्जन का अगल प्रश्न तीर की तरह फिर चुभा, एक तो वे पति-पत्नी इतवार की छुट्टी का आनन्द लेने के लिए बाहर निकले और उनको खड़ा करके सवाल पर सवाल दाग़े जा रहे हैं। उन्होंने कनखियों से मालती की ओर देखा, वह भी अंदर-ही-अंदर परेशान लग रही थीं। उनका उत्तर न पाकर वे सज्जन फिर बोले, "आपने कोई उत्तर नहीं दिया।"

"15 दिन पहले प्रशासनिक स्थानान्तरण होकर आया हूँ।"

"प्रशासकीय स्थानान्तरण मतलब..."

"ऐसा कुछ नहीं है जो आप समझ रहे हैं।" बीच में ही बात काटकर सुहास गुप्ता बोले, "मेरी ईमानदारी ने मेरा स्थानान्तरण करवाया।"

"इससे पहले कहाँ थे?" उन सज्जन ने फिर अगला प्रश्न दाग़ दिया।

"उज्जैन में।" उन्होंने संक्षिप्त उत्तर देकर चलने की इजाज़त माँगी, तब वे सज्जन बोले, "आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

"हमें यह नहीं पता कि हमें कहाँ जाना है। बस घर में बोर हो रहे थे, तब बाहर घूमने निकल गए। इस परदेश में हमारा अपना कोई नहीं है।" बड़े उदास मन से जब सुहास गुप्ता ने यह बात कही, तब वे सज्जन बोले, "आप इसे परदेश कैसे मान रहे हैं, हम हैं न.... आइए! मेरे घर वहीं बैठकर गपशप करेंगे, चाय पिएँगे।"

तब वे सज्जन अधिकारपूर्वक घर के भीतर अपने ड्राइंगरूम में ले गए क्षणभर में उनकी पत्नी, बहू-बेटे, पोते-पोतियाँ सब आस-पास आकर बैठ गए। परिचय का आदान-प्रदान हुआ। उन सज्जन ने अपना नाम आनन्द शर्मा बताया। शिक्षा विभाग के विकास खण्ड शिक्षा अधिकारी पद से सेवा निवृत्त हुए हैं। उनके दो लड़के हैं। दोनों शिक्षा विभाग में ही कार्यरत हैं। फिर बातों का ऐसा सिलसिला चला, कब तीन घंटे बीत गए पता ही नहीं चला। इन तीन घंटों में वे इतने नज़दीक आ गए जैसे बरसों से एक-दूसरे को जानते हों। मालती भी इस परिवार से मिलकर ख़ुश थी। उनकी दोनों बहुएँ उनकी सहेलियाँ बन गईं। आनन्द शर्मा उनके लिए दादाजी बन गए।

अब दोनों घरों के बीच पारिवारिक सम्बन्ध बन गए। एक-दूसरे के घरों में आने-जाने लगे। सुहास गुप्ता और उनकी पत्नी मालती खुश हैं। आनन्द शर्मा परिवार के एक हिस्सा बन गए। सुख-दुःख के साथी भी। धीरे-धीरे क़स्बे के कई लोगों से परिचय हुआ। अब यह क़स्बानुमा शहर अजनबी नहीं रहा।

यहाँ रहते-रहते उनको छह महीने गुज़र गए। अब वे क़स्बानुमा शहर से अच्छी तरह से परिचित हो गए। परिचय का दायरा भी उनका बढ़ता गया।

छुट्टी वाले दिन या कोई त्यौहार होता तो एक-दूसरे के घर आने-जाने लगते। अब छुट्टी वाले दिन उनको समय का पता ही नहीं चलता था। मालती आवभगत में ही लगी रहती थी। कभी दफ़्तर के सहयोगी आते। कभी वे उनके घर चले जाते। वह तो दिनभर दफ़्तर में रहते, मालती ने अपने परिचय का दायरा बढ़ा लिया। उनका अपना एक अलग ही महिला-मंडल बन गया था। दिनभर मुहल्ले के राधा-कृष्ण मन्दिर में जाकर भजन-कीर्तन करना उनके नित का काम बन गया। मालती ढोलक के साथ भजन अच्छा गा लेती हैं। अतः मुहल्ले की महिलाओं के लिए चर्चित हो गईं बल्कि एक भजन-मंडली हो गई। उसमें मालती सर्वे-सर्वा बन गईं परन्तु दफ़्तर में सुहास गुप्ता की ईमानदारी फिर रोड़ा बन गई। उनके अधिनस्थ साथी नाराज़ रहने लगे। उनकी पीठ-पीछे 'हरिशचन्द्र की औलाद' कहने लगे मगर उन्होंने किसी की भी परवाह नहीं की। जब बिना रिश्वत लिए लोगों के काम होने लगे तब लोग भी उनसे खुश रहने लगे। आम जनता तो खुश थी, नेता भी खुश थे। उनकी ईमानदारी पूरे शहर में चर्चा का विषय बनी हुई थी। उनके प्रति ऐसी चर्चा थी कि ईमानदारी से बिना ले-देकर काम करने वाला बाबू है। अतः लोगों की नज़र में वे चढ़ गए।

अब यहाँ आकर उनको परायेपन का एहसास नहीं होता है। इससे परिचय का दायरा उनका बढ़ गया मगर मकान-मालिक दयाराम उनके यहाँ बेवजह आने-जाने वालों से नाराज़ हो गए। उनके यहाँ परिचित के अलावा वे लोग भी आने लगे, जो अपनी फ़ाइलों का काम जल्दी करवाना चाहते थे। अतः उनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो पैसे देकर जल्दी-से-जल्दी फ़ाइल को निपटाना चाहते थे मगर ऐसे लोगों को नियमानुसार काम की सीख ज़रूर देते थे। फिर उनका काम जल्दी कर भी देते थे। ऐसे में एक दिन मकान-मालिक दयाराम ग़ुस्से से बोले, "बाबूजी, मैं देख रहा हूँ कि आपके यहाँ बेवजह लोगों का आना-जाना ज़्यादा ही हो गया है?"

"आने से किसी को रोक तो नहीं सकता।" सुहास गुप्ता ने भी थोड़ा नाराज़ होकर जवाब दिया।

"जबकि मैंने मकान देते समय शर्त रखी थी। बेवजह लोग नहीं आएँगे। मैं देख रहा हूँ लोग आपके यहाँ आते हैं। घंटों बैठे रहते हैं।" इस बार मकान-मालिक की आवाज़ में सख़्ती थी।

"अब आदमी अधिक देर तक बैठ रहा है तब मैं जाने को उसे कह तो नहीं सकता!"

"मगर बहाना तो बना सकते हैं।"

"मुझे बहाना बनाना नहीं आता है।" सुहास गुप्ता ने स्पष्ट कहा, "मेरे यहाँ तो परिचित के अलावा शासकीय काम से भी लोग घर आते हैं। मैं मना नहीं कर सकता।"

"ठीक है आप मना नहीं कर सकते हैं। तब मकान ख़ाली करके अपना और कहीं डेरा डाल दें।" मकान-मालिक की स्पष्ट धमकी थी। तब उन्होंने ज़रा ग़ुस्से भरे शब्दों में कहा, "ठीक है ख़ाली कर दूँगा।"

बस दोनों में यह अंतिम बात हुई। फिर सुहास गुप्ता ने भी मकान तलाशना शुरू कर दिया। अब उनके परिचय का दायरा बहुत बढ़ गया था। नया मकान तलाशने में ज़रा भी देर नहीं लगी।

ठीक दो दिन बाद सुहास गुप्ता मिनी ट्रक में सामान रखवा रहे थे। ❑

कहानी



बाबूजी का बुख़ार

इस बार बाबूजी जो बीमार पड़े तो अड़ोस-पड़ोस व समाज सेवी संस्था के लोग उन्हें देखने घर पर आने लगे थे। पहले दिन अनु घर पर आए लोगों के लिए चाय-पानी की व्यवस्था व उनके साथ बैठकर बातें करने लगी थी जिससे उसका काफ़ी समय यूँही बर्बाद हुआ। दूसरे दिन वह सिर्फ़ बैठने के लिए ही बोलती थी। फिर भी कुछ संस्था के रिटायर लोग घंटों बैठे रहते थे। सुशांत को भी उनका बैठना ठीक नहीं लगा। बाबूजी को डॉक्टर ने आराम करने के लिए कहा है।



देवांशु पाल

ई-मेल : dewanshupal@gmail.com

दो दिन हो गए सुशांत के बाबूजी का बुख़ार उतर ही नहीं रहा है। कभी-कभी बुख़ार 104 डिग्री तक चढ़ जाता है और 100 डिग्री से कम नहीं हो रहा है, बुख़ार उतारने की दवाई आठ-आठ घंटे में खिलाने के बावजूद तबीयत जस की तस बनी हुई है। बुख़ार के अलावा हाथ-पाँव में दर्द, सिर भारी, मुँह का स्वाद बिगड़ गया है, कुछ खाने का मन नहीं करता, साथ ही कमज़ोरी भी है।

सुशांत, बाबूजी की तबीयत के बारे में सोचकर जितना परेशान है, कहीं उससे ज़्यादा वह अपने दफ़्तर से कम्पनी के फ़ोन से परेशान है। सुबह से शाम तक मोबाइल की घंटी बजती रहती है। दो दिन दफ़्तर से छुट्टी लेकर वह घर पर ही रह रहा है, बाबूजी की देखभाल के लिए, पर यह बात दफ़्तर वाले समझें तब ना। सुशांत को रात में बाबूजी के कमरे में सोफ़े पर सोना पड़ रहा है। ठीक से नींद नहीं आती और ऊपर से दिनभर कम्पनी का फ़ोन। वो परेशान हो चुका था, सोच रहा था कि बाबूजी को पास के किसी नर्सिंग होम में दाख़िल कर दे। वहाँ डॉक्टर व नर्सिंग की सुविधा मिल जाएगी और उसे दफ़्तर से भी छुट्टी नहीं लेनी होगी पर डॉक्टर का कहना है कि यह मौसमी बीमारी है। पाँच-छह दिन में ठीक हो जाएगा, नर्सिंग होम में एडमिट कराने की ज़रूरत नहीं है। बस घर पर ही समय पर दवाई देते रहें। ज़्यादा उम्र होने के कारण उनकी देखभाल में ज़्यादा ही ध्यान देना होगा।

सुशांत की पत्नी अनु भी प्राइवेट इंग्लिश मीडियम

स्कूल में हायर सेकेण्डरी के बच्चों को पढ़ाती है, वह भी दो दिन से घर पर ही है। बाबूजी की देखभाल कर रही है। वैसे भी तीन दिन से घर पर काम करने वाली बाई भी नहीं आ रही है। छुट्टी लेकर गाँव गई है, ससुर की तबीयत ठीक नहीं है, दो दिन कहकर गई थी और आज भी नहीं आई है। पिछली बार भी दिवाली के बाद ऐसे ही दो दिन बोलकर गई थी और एक सप्ताह बाद लौटी थी। पूछने पर बताया था कि उसकी तबीयत बिगड़ गई थी। पता नहीं कितना सच बोलती है। सुबह सात बजे आती है काम पर। फिर नाश्ता बनाती है फिर दोपहर का खाना, शाम का नाश्ता और रात का भोजन बनाकर शाम को घर चली जाती है। अनु को सिर्फ़ सुशांत और बेटी प्रिया को ध्यान देना पड़ता है। दो दिन से उसके न आने पर अनु को ही घर का पूरा काम अकेले सम्भालना पड़ा है। बड़ी मुश्किल से दो दिन की छुट्टी मैनेज की है। प्रिंसिपल मैडम नाराज़ हो रही थीं, पर बाद में मान गईं और कह रही थीं कि, "दो दिन के बाद ज़रूर आ जाना, छुट्टी बढ़ाना नहीं। वैसे भी स्टाफ़ पहले से ही छुट्टी पर है। जुलाई का महीना है, नई कक्षाओं में एडमिशन चालू हो गया है, ऐसे समय बहुत काम रहता है।"

सुशांत जिस मकान में रह रहा है उसे बाबूजी ने नौकरी में रहते हुए बनाया था। उनके बाबूजी खाद्य विभाग में अधीक्षक के पद पर से रिटायर हुए थे। अभी वह 76 वर्ष के हैं, अच्छी पेंशन मिल जाती है। बाबूजी की पेंशन के पैसों से ही घर का अधिकतर ख़र्च चलता है। सुशांत और अनु दोनों ही प्राइवेट नौकरी में हैं। दोनों की तनख़्वाह ज़्यादा नहीं है। बाबूजी कहते हैं, "आख़िर मेरी पेंशन के पैसों को बैंक में जमा रहने से क्या फ़ायदा, मेरा कोई भरोसा नहीं है। पता नहीं कब साँसें रुक जाएँ। इसलिए कहता हूँ कि इन पैसों को ख़र्च करना ही उचित है। वैसे तो मैंने विशेष परिस्थिति के लिए बैंक में कुछ पैसे फ़िक्स डिपोज़िट कर रखे हैं, वो काम आएगा।..." यही सोचकर बाबूजी हर महीने सुशांत को पेंशन का पैसे निकालने के लिए चेक काटकर देते हैं।

सुशांत की अम्मा का देहांत हुए तीन साल हो गए हैं। अम्मा के देहांत के बाद सुशांत के बाबूजी एकदम अकेले हो गए थे। वे अंदर से काफ़ी टूट गए थे। जब अम्मा थीं तब बाबूजी उनके साथ दिनभर घर पर रहते थे। उनके जाने के बाद वे एकदम अकेले हो गए थे। दिनभर उन्हें यह घर काटने जैसा लगने लगा था। पड़ोस के सुब्रत दादा एक निजी समाज सेवा संस्था में अध्यक्ष थे। एक दिन वे घर आए और बाबूजी की मानसिक हालत को देखकर उन्होंने बाबूजी को अपनी संस्था से जुड़ने को कहा। सुब्रत दादा ने यह भी कहा कि वे रिटायरमेन्ट के बाद घर पर ही रह रहे थे। कुछ महीनों के बाद घर पर एकाएक बैठ जाने से उनकी मानसिक स्थिति बिगड़ती जा रही थी।

एक दिन वे अख़बार में इस संस्था के कार्यक्रमों के बारे में समाचार पढ़कर काफ़ी खुश हुए, जब वे संस्था के लोगों से मिले तो उन्हें काफ़ी अच्छा लगा और वे संस्था से जुड़ गए थे। संस्था काफ़ी पुरानी है, क़रीब ढाई सौ कार्यकर्ता हैं। ईदगाह चौक पर उनका अपना कार्यालय है। बाबूजी के समझाने पर सुशांत और अनु ने भी बाबूजी को इस संस्था से जुड़ने के लिए अपनी सहमति दे दी। संस्था से जुड़ने के बाद बाबूजी प्रायः घर से बाहर रहने लगे थे, जिससे वह सुशांत की अम्मा की

याद भुलाने लगे और इस तरह बाबूजी जीवन के नए रास्ते पर चलने लगे। बाबूजी हमेशा स्वस्थ ही रहते हैं और कम ही बीमार पड़ते हैं। सर्दी-खाँसी, अपचन जैसी छोटी बीमारी को बाबूजी खुद ही आयुर्वेदिक दवाई से ठीक कर लेते थे। अम्मा के रहते एक बार बाबूजी बाथरूम में फिसलकर गिर पड़े थे, उनकी एड़ी की हड्डी खिसक गई थी। वे दस-पन्द्रह दिन बिस्तर पर थे, उन दिनों अम्मा ही बाबूजी की देखभाल करती थीं।

इस बार बाबूजी जो बीमार पड़े अड़ोस-पड़ोस व समाज-सेवी संस्था के लोग उन्हें देखने घर पर आने लगे थे। पहले दिन अनु घर पर आए लोगों के लिए चाय-पानी की व्यवस्था व उनके साथ बैठकर बातें करने लगी थी जिससे उसका काफ़ी समय यूँही बर्बाद हुआ। दूसरे दिन वह सिर्फ़ बैठने के लिए ही बोलती थी। फिर भी कुछ संस्था के रिटायर लोग घंटों बैठे रहते थे। सुशांत को भी उनका बैठना ठीक नहीं लगा। बाबूजी को डॉक्टर ने आराम करने के लिए कहा है। सुशांत बीच-बीच में बाबूजी के पास जाकर उन्हें आँख बन्द कर सोने का प्रयास करने के लिए कहता था, पर बाबूजी सुनने को तैयार कहाँ! वे इतने बुख़ार में भी उनकी बातें सुनते रहते थे और बीच-बीच में थोड़ी-बहुत बातें भी करते थे।

स्कूल के अलावा अनु शाम में घर पर दो बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती है। दरअसल शाम के समय अनु घर पर अकेली रहती है, सुशांत दफ़्तर से देर रात घर लौटता है, एकलौती बेटी प्रिया ट्यूशन चली जाती है, वह शाम के बाद ही घर लौटती है। बाबूजी शाम को निकल जाते हैं और आठ बजे ही घर लौटते हैं। अनु को ख़ाली समय काटना मुश्किल हो जाता है, इसलिए वह दो बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने लगी है। बाबूजी की तबीयत ख़राब रहने से अनु ने दो दिन से बच्चों को ट्यूशन आने से मना कर दिया है।

कल रात सुशांत अनु से कह रहा था कि आज उसे दफ़्तर जाना ही होगा, दो दिन उसने बड़ी मुश्किल से घर पर बिताया और मोबाइल पर किसी तरह ज़रूरी कामों को निपटाया, वैसे भी आज दफ़्तर में मंथली बिज़नेस मीटिंग है। मीटिंग में उसे रहना बहुत ज़रूरी है। बाबूजी की दवा तो चल रही है, बुख़ार कम नहीं होने पर डॉक्टर ने कहा है कि दवा शाम को बदल देंगे। सुशांत की बात सुनकर अनु ने कहा था, "ठीक है, पर मेरे बारे में भी तो सोचो। कल भी अगर काम वाली बाई नहीं आई तो फिर मुझे ही सारा काम अकेले करना होगा, साथ ही बाबूजी की देखभाल भी। दो दिन से वे बिस्तर पर पड़े हैं, आज उनको बिस्तर पर बैठना होगा। गरम पानी से शरीर को स्पंज करना होगा। स्कूल से बड़ी मुश्किल से दो दिन की छुट्टी मैडम शालिनी से कहकर एडजस्ट किया है। आज उनसे फिर बात करनी होगी, एक दो-दिन की और के लिए। पता नहीं वह क्या जवाब देंगी, वैसे भी सभी मैडम के साथ कोई-न-कोई घरेलू प्रॉब्लम रहती ही है। प्रिया को भी स्कूल जाना है, मंथली टेस्ट चल रहा है।"

सुशांत और अनु काफ़ी असमंजस में थे। बाबूजी का बीमार पड़ना उनके लिए काफ़ी चिन्ता का विषय बन गया है। चिन्ता बाबूजी के स्वास्थ्य को लेकर नहीं बल्कि घर पर रहकर उनकी देखभाल करने की थी।

आज तीसरा दिन है, सुबह से अनु किचन में व्यस्त तो थी पर उसका ध्यान कॉल बेल की घंटी बजने पर थी। जब सुबह के नौ बजने लगे थे, अनु समझ गई कि आज

भी काम वाली बाई नहीं आएगी। उसने कुछ चिड़चिड़े मन से उसे फ़ोन लगाया। फ़ोन कवरेज एरिया से बाहर बता रहा है। अनु ने फ़ोन डायनिंग टेबल पर पटक दिया और मन-ही-मन बड़बड़ाने लगी। धड़ल्ले से गाँव में मोबाइल बिकने से टावर की किसी को चिन्ता नहीं। गाँव वाले तो मोबाइल फ़ोन पर फ़िल्मी गाने और फ़िल्म ही देखना पसन्द करते हैं।

सुशांत सुबह के नौ बजे तैयार होकर दफ़्तर के लिए निकल पड़ा। जाते समय बाबूजी से मिलने गया, पर उस समय बाबूजी आँखें बन्द कर लेटे थे। शायद नींद में रहे होंगे। सुशांत अनु को दवा के बारे में समझाकर चले गए, बेटी प्रिया भी साढ़े आठ बजे की बस से स्कूल चली गई है।

इन दिनों शहर में काफ़ी ज़्यादा गर्मी पड़ने लगी है। बारिश का नामोनिशान नहीं है। जुलाई का आधा महीना बीतने लगा है। शायद जून माह के आख़िरी सप्ताह दो-चार दिन शाम के समय आँधी-तूफ़ान के साथ पन्द्रह-बीस मिनट बारिश हुई थी, फिर घंटों बिजली चली गई थी। सुशांत ने कई बार इनवर्टर ख़रीदने की सोची पर वह यह सोचकर बार-बार टालता गया कि घर पर इनवर्टर कनेक्शन के लिए उसे दफ़्तर से एक दिन की छुट्टी लेनी होगी। उसके लिए छुट्टी मिलना मुश्किल है। रविवार के दिन दुकान बन्द रहती है। कभी-कभी तो यह गर्मी असहनीय हो जाती है। पता नहीं इस घर में कब इनवर्टर लगेगा! तब तक ऐसे ही गरमी को सहन करना होगा, ख़ासकर रात के वक़्त।

दोपहर के समय बाबूजी को एक रोटी दूध में भिगोकर खिलाई थी। वैसे बाबूजी के खाने-पीने को लेकर अनु कभी परेशान नहीं हुई है। बाबूजी अम्मा की तरह बहुत ही शान्त एवं सहज-सरल इंसान हैं। बहुत कम ही उनको ग़ुस्सा होते देखा है। अनु सोफ़े पर लेटे-लेटे सोच रही थी कि यदि कल भी बाबूजी की तबीयत ठीक नहीं हुई, बुख़ार नहीं उतरा तब वह क्या करेगी? काम वाली बाई की भी कोई ख़बर नहीं है। ऐसे में वह स्कूल कैसे जा पाएगी! तभी मोबाइल की घंटी बजने लगी। देखा तो मैडम शालिनी का फ़ोन है, "हाँ, मैडम बोलिए। अभी बाबूजी की तबीयत तो वैसी ही है, बुख़ार कम नहीं हो रहा है... इसी बात से हम लोग परेशान हैं। दो दिन हो गए, दवा भी चल रही है....हाँ, मैं सोच तो रही हूँ, कल ज्वॉइन करूँगी...वैसे भी एक और प्रॉब्लम से मैं परेशान हूँ। तीन दिन से कामवाली बाई नहीं आ रही है, गाँव गई है, ससुर की तबीयत ठीक नहीं है.... आज आने का था पर नहीं आई....कोई ख़बर भी नहीं भेजी, फ़ोन करती हूँ तो कवरेज क्षेत्र से बाहर ही बता रहा है....आज मिस्टर भी ऑफ़िस चले गए हैं...ऐसी हालत में बाबूजी को अकेला घर पर छोड़ना भी तो ठीक नहीं है।...उनको कमज़ोरी आ गई है...बाथरूम तो चले जाते हैं पर डर बना रहता है....शाम तक उनकी तबीयत ठीक होने लगे तभी कुछ कह पाऊँगी...क्या आप एक-दो दिन और एडजस्ट नहीं कर सकेंगी?

हाँ, वो तो आपने बताया था कि आपको भी प्रॉब्लम है।" तभी उधर से मैडम ने अनु से कहा, "क्या बाबूजी को वृद्धाश्रम में नहीं रख सकते?" यह सुनकर अनु ने मैडम से कहा कि "अभी तक तो हम लोगों ने इस बारे में नहीं सोचा है.... हाँ....वो तो पता है.....अच्छे परिवार वाले भी अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम में रखते हैं....वैसे हमारे बाबूजी काफ़ी स्ट्रांग हैं। अपने को सम्भाल

लेते हैं...पता नहीं कब तक बुख़ार नॉर्मल हो पाता है....चलिए मैं कोशिश करती हूँ कल ज्वॉइन करने के लिए....।"

अनु मोबाइल को सोफ़े पर छोड़ देती है, काफ़ी मुश्किल घड़ी आ गई है। शहर में ऐसे कोई परिचित या पारिवारिक लोग नहीं हैं जिनके भरोसे बाबूजी को घर पर छोड़ा जाए। एकाएक अनु को अपने पिता के बारे में याद आने लगी, दो साल पहले ही उनका हर्निया का ऑपरेशन हुआ था। अनु अकेली गई थी देहरादून, अपने पापा के घर। वह ऑपरेशन के दिन पहुँची थी। उसके पिता काफ़ी साहसी हैं। तीन-चार दिन के बाद ही वे घर लौटे थे। उनके पिता भी 65 वर्ष के हो गए हैं। उनको हाई बीपी, शुगर, कोलेस्ट्रॉल और साइटिका की बीमारी है। फिर भी वह अपने में मस्त रहते हैं। बाहर घूमना, शादी-पार्टी, पिकनिक मनाने में हमेशा आगे रहते हैं। समय पर दवा लेना और सुबह मॉर्निंग वॉक पर जाना नहीं भूलते। पिछली बार जब अनु देहरादून गई थी तब बाबूजी घर पर नहीं थे। वैजाक गए हुए थे, मित्रों के साथ। समंदर देखना और मज़ा लेना, यही कारण था वहाँ जाने का। जब वे लौटकर आए थे तब मम्मी और अनु को दो दिन तक वैजाक की फ़ोटो और बातें सुनाते रहे। मम्मी का स्वास्थ्य भी ठीक ही रहता है। अनु अपने मम्मी-पापा के स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता नहीं करती। बीच-बीच में मम्मी-पापा से फ़ोन पर ही बातें हो जाती हैं।

काफ़ी देर तक वह मोबाइल पर व्हाट्सएप देखती रही, पता नहीं कब उसकी आँखें लग गईं। जब आँखें खुलीं, वह हड़बड़ाकर सोफ़े से उठ बैठी। एकाएक उसकी नज़र बाबूजी के बिस्तर पर पड़ी, देखा तो बाबूजी बिस्तर पर नहीं हैं। अनु घबराकर सोफ़े से उठ खड़ी हुई और कमरे के चारों तरफ़ देखने लगी। कमरे में बाबूजी को न देख पाकर जल्दी से बाथरूम की तरफ़ गई। बाबूजी वहाँ भी नहीं दिखे। फिर वह किचन की तरफ़ भागी। वहाँ भी बाबूजी को न देख अनु घबरा-सी गई। उसकी आँखों से आँसू निकल आए। तभी एकाएक बाबूजी के कमरे की खिड़की से तेज़ हवा का झोंका अंदर की तरफ़ आने लगा। अनु समझ गई कि मौसम ठीक नहीं है। उसने खिड़की से देखा बाहर तेज़ हवा के साथ झमाझम बारिश हो रही थी। बरामदे का दरवाज़ा खुला था, उसने बरामदे में आकर देखा तो बाबूजी बाहर बरामदे के कोने पर रखी कुर्सी पर बैठे बारिश देख रहे थे।

अनु घबराकर बाबूजी के पास जाकर खड़ी हो गई और बड़े आश्चर्य से पूछा, "आप यहाँ कब से बैठे हैं?...." बाबूजी ने कुछ धीमी स्वर में कहा, "अभी! बारिश शुरू होने के बाद।"

"आपकी तबीयत ठीक है?...." अनु ने उत्सुकतावश पूछा।

"अभी कुछ ठीक लग रही है। लगता है बुख़ार उतर गया है।"

अनु ने बाबूजी के मस्तक पर हाथ रखा। मस्तक ठंडा था। बाबूजी का बुख़ार उतर चुका है। अनु को याद आया कि सुबह आठ बजे बाबूजी को बुख़ार का टेबलेट खिलाया था, उस समय बुख़ार 100 डिग्री था। अभी शाम के 4.30 बज रहे हैं। अब शायद बुख़ार उतर गया है। अनु ने इत्मीनान से गहरी साँस ली, फिर कमरे से बाबूजी की शॉल लेकर आई और बाबूजी को ओढ़ा दिया।

बाहर झमाझम बारिश हो रही थी। शायद मानसून दस्तक दे रहा है। ❑

कहानी

वे कुछ क्षण

दिव्या अपने कमरे की चौड़ी, खुली खिड़की के सामने जाकर कुछ देर तक खड़ी रही। बाहर केवल शोर था। भीतर और बाहर का शोर उसके मस्तिष्क को झिंझोड़ रहा था। उसे लग रहा था जैसे भीतर जमा गर्म लावा रिस रहा है और उसकी देह के साथ-साथ उसके मन को भी जला रहा है। अपने भीतर उठ रहे तूफ़ान का सामना करने के लिए उसने खिड़की बन्द कर दी।



सुमन बाजपेयी

ई-मेल : sumanbajpai@gmail.com

ख़बर सुनकर वह कुछ क्षण के लिए जड़ हो गई थी। दुखद, बहुत दुखद ख़बर थी। शोक में डूब गई थी वह लेकिन उस शोक के साथ एक डर भी मन में उपज आया था। घबराहट उसकी देह को क्षीण कर रही थी, लग रहा था कि चक्कर खाकर गिर ही जाएगी। अचानक यह कैसे हो गया? अचानक ही तो होती हैं ऐसी बातें, अचानक ही तो मिलती हैं ऐसी दिल दहलाने वाली ख़बरें। पहले से कुछ तय थोड़े न होता है? पता हो तो इन्सान बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना को होने से रोक न ले। क्या हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ, यह सब सोचने का समय नहीं है यह।

सोचना तो यह है कि वह कैसे बताएगी दिव्या दीदी को इसके बारे में! दीदी का दुख तो सबसे बड़ा है। जब वही ख़बर सुनकर खुद को सम्भाल नहीं पा रही है तो दीदी खुद को कैसे सम्भालेंगी। वह भी कैसे सम्भाल पाएगी दीदी को? कहीं यह ख़बर सुन उन्हें कुछ हो गया तो? डॉक्टर ने दो महीने पहले उन्हें अस्पताल से डिस्चार्ज करते हुए साफ़ कहा था कि, "इन्हें किसी तरह का सदमा न लगे, कोई मानसिक तनाव न हो। कम उम्र में जब हार्ट अटैक आता है तो उसे गम्भीरता से लेना चाहिए। शी इज़ ओनली फ़ोर्टी ईयर्स ओल्ड और अभी से इनको दिल के रोग ने घेर लिया है। नॉट ए गुड साइन मिस्टर कुलकर्णी।"

वह तब वहीं थी। मिस्टर शरद कुलकर्णी, यानी दिव्या दीदी के पति और अपने जीजाजी के साथ।

"हैरानी की बात है। दिव्या को आख़िर किस बात की टेंशन हो सकती है? मैं तो इन पर अपनी जान छिड़कता हूँ। किसी चीज़ की कमी नहीं रहने देता। फिर किस बात का टेंशन है? मुझसे तो कभी कुछ इस बारे में कहा नहीं, न ही मुझे कोई वजह नज़र आती है," शरद ने दिव्या का हाथ थामते हुए कहा था। चेहरे पर आई नाराज़गी के भावों को हालाँकि शरद ने छिपाने की कोशिश की थी, लेकिन दिख ही गए थे फिर भी।

तब भी चुप ही रही थी दिव्या। बस कुछ पल के लिए नज़रें शरद पर टिका दी थीं, जैसे कुछ पूछना चाहती हो। दिव्या दीदी के मन में चल रही उथल-पुथल को समझ पाना किसी के लिए भी आसान नहीं था। वह ज़्यादा बोलती ही कहाँ थीं लेकिन दीदी के भीतर एक लावा ज़रूर धधकता रहता है, यह वह जानती है। बेशक उससे भी वह अपनी वे बातें शेयर नहीं करतीं जो उन्हें परेशान करती हैं, पर छोटी ही सही, पर है तो वह बहन ही उनकी। इतना तो जानती ही है उनके बारे में। लगातार मिलना-मिलाना तो लगा ही रहता है, वह भी तभी जब शरद जीजाजी शहर में नहीं होते हैं।

और अब यह हो गया। बताना तो पड़ेगा। वह नहीं बताएगी तो आस-पास से, किसी-न-किसी रिश्तेदार से, परिचित से पता ही चल जाएगा। मायके में तो सबको पता चल गया है। माँ से कैसे छुपाती वह इस बात को? और माँ, उन्होंने तो सबको तुरन्त फ़ोन मिलाने शुरू कर दिए थे। दीदी के ससुराल वालों को भी बताना ही होगा। वैसे एक ननद ही है, जो कैलीफ़ोर्निया में रहती है। जीजाजी के न तो माता-पिता हैं, न ही कोई और भाई-बहन। अपने सम्बन्धियों से उन्होंने कभी रिश्ता नहीं रखा। स्वभाव में कटुता है और किसी पर विश्वास न करने की आदत भी। इसी कारण लोग उनसे दूरी बनाकर रखना ही पसन्द करते हैं। वह तो दीदी की वजह से सम्बन्ध टूटे नहीं हैं और उनसे मिलने चले आते हैं, फिर चाहे जीजाजी के दोस्त हों या कुलीग या पास-पड़ोसी। दिव्या बेशक कम बोलती है, पर किसी के स्वागत-सत्कार में कमी नहीं रखती। बेशक भीतर ज्वालामुखी धधकता रहता हो, पर व्यवहार से सौम्यता झलकती है।

"दीदी, आप कैसे निभाती हो जीजाजी के साथ?" कितनी बार पूछा है उसने इस बात को पर दीदी कुछ नहीं कहतीं। चुप-सी बैठी रहती हैं।

कभी ज़्यादा कुरेदो तो इतना भर कहेंगी, "कुछ बातों के जवाब नहीं होते तनु। उन्हें बन्द अलमारियों में ताला लगाकर छोड़ दिया जाए तो ज़्यादा बेहतर होता है। वे अलमारियों के अंदर बन्द ही पड़े रहें तो अच्छा है, वरन बाहर निकलने पर उछल-कूद करने से बाज़ नहीं आएँगे। क्यों बेकार में शोर-शराबा हो, बहस हो या लड़ाई-झगड़ा हो। मुझे वह सब पसन्द नहीं।"

दीदी को वह कैसे सम्भालेगी, यह बात उसके अंदर ख़ौफ़ पैदा कर रही थी।

ओह! कैसी विकट परिस्थिति है! पर बताना तो पड़ेगा ही। घर की सीढ़ियों पर क़दम रखते हुए तनु के पैर काँप रहे थे। उसने ज़ोर से अपनी आँखों को रुमाल से रगड़ा। नमी नहीं दिखनी चाहिए बिलकुल भी। वह सहज रहेगी तो दीदी को सम्भाल पाएगी। हालाँकि दीदी अपने मनोभावों को सबके सामने प्रकट करना पसन्द नहीं करती हैं। कैसी भी स्थिति हो, तटस्थ बनी रहती हैं, लेकिन यह बात अन्य स्थितियों से बहुत भिन्न है। इसकी वजह से तो दुख की बदली आसमान में छा गई है। अँधेरा ही हो गया है उनके जीवन में। जो हुआ उससे तो दीदी का पूरे जीवन ही उलट जाएगा। कैसे सहेंगी वह? वैसे ही अपने भीतर न जाने कौन-सा ज्वालामुखी जलाए बैठी हैं।

तनु जैसी नहीं हैं दीदी। तनु तो बड़बड़ कर अपना सारा ग़ुबार निकाल लेती है और हलकी हो जाती है पर दिव्या, वह न तो कभी शिकायतों का पुलिंदा खोलकर बैठती है, न नाराज़गी दिखाती है और न ही रो-बिसुर कर सहानुभूति बटोरने में यक़ीन रखती है। शान्त रहती है और खुद से ही खुद की लड़ाई लड़ती रहती है। तभी तो शरद के कुछ भी कहने पर विवाद नहीं करती। ऊँची आवाज़ में तो किसी ने उन्हें बोलते सुना ही नहीं। एकदम चुप्पा तभी दिल का रोग लगा बैठी है।

'दीदी,' तनु ने धीमे स्वर में कहा।

दिव्या ड्राइंगरूम में सोफ़े पर अलसाई से लेटी किताब पढ़ रही थीं। कुर्ती और टाइट्स में किसी षोडषी से कम नहीं लग रही थीं। कटे बाल उनके गोल चेहरे पर बहुत जँचते हैं। वज़न नहीं बढ़ने देतीं अपना। वैसे भी दिल का रोग लगाने के बाद खाने-पीने का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। एक तनु है जो उनसे केवल तीन बरस ही छोटी है और फूल कर फ़ुटबॉल बनी जा रही है पर दिव्या हमेशा उससे कहती है कि "तू ऐसी ही गोल-मटोल बहुत प्यारी लगती है। कहने दे जो तुझे मोटी कहता है। समझ ले उनकी आँखें ही ख़राब हैं।"

"तनु, इस समय? ऑफ़िस से छुट्टी ली है क्या? या जल्दी निकल आई? सब ठीक है न? बैठ मैं तेरे लिए नींबू-पानी बनाकर लाती हूँ।" दिव्या ने स्नेह से उसके गाल सहलाते हुए कहा।

तनु का मन हुआ कि कहे मेरी चिन्ता मत करो, इस समय मैं अपने लिए नहीं, आपके लिए आई हूँ, और देखो जिस दीदी को मैं सबसे ज़्यादा प्यार करती हूँ, उसी को बुरी ख़बर सुनाने की संदेशवाहक बनकर आना पड़ा है।

किसी तरह अपनी सारी शक्ति बटोरी उसने। "बैठो न दीदी। कुछ नहीं चाहिए। कुछ बताना है।" छोटे-छोटे वाक्यों में किसी तरह अपनी बात कहने की हिम्मत जुटाते हुए वह बोली।

"ओह! रितेश से झगड़ा हुआ क्या? ग़लती तेरी ही होगी। रितेश बहुत ही सुलझा हुआ इंसान है। तू ही शैतान है एकदम।" दिव्या के होंठों पर हलकी-सी मुस्कान खेल गई थी।

'कितनी खिली मुस्कान है दीदी की', तनु ने सोचा। शादी के बाद तो बहुत ही कम मुस्कुराते देखा है उन्हें।

"दीदी, बात यह है कि ," तनु के आँसू बह निकले। आवाज़ काँपने लगी। टूटे-फूटे वाक्यों और आधे-अधूरे संकेतों में उसने बात कही और दीदी से लिपट कर फूट-फूट कर रो पड़ी।

"दीदी, आपको ख़ुद को सम्भालना होगा। जीजाजी के जाने का दुख इतना गहरा है कि मुझे समझ नहीं आ रहा है कि मैं आपको किस तरह दिलासा दूँ। इतना अकस्मात है यह कि दिमाग़ सुन्न हो गया प्रतीत हो रहा है। नियति पर किस का वश है दीदी! मैं जानती हूँ मेरी दीदी स्ट्रॉग है," तनु बेतहाशा रो रही थी।

तब तक शरद के दोस्त भी पहुँच गए थे और आस-पड़ोसी भी। दिव्या के मायके वाले, सम्बन्धी सब एक-एक करके पहुँच रहे थे। शरद के ग़ुस्सैल स्वभाव से बेशक सब नाराज़ रहते थे, पर दिव्या के लिए सबके मन में इज़्ज़त और स्नेह था। इसलिए उसे कैसे सम्भाला जाए, यह सोचकर सब दौड़े चले आए थे। न्यूज़ में कई लोगों ने यह ख़बर देखी थी। पुणे के बाहरी इलाक़े के पास सुबह हुई दुर्घटना की ख़बर टीवी पर ब्रेकिंग न्यूज़ की तरह दिखाई जा रही थी। हादसे में 'मारे गए' लोगों की लिस्ट में शरद का नाम भी था। ख़बर देखकर रितेश स्तब्ध रह गया था और उसने ही तनु से कहा था कि वह दीदी को जाकर बताए। किसी की हिम्मत ही नहीं हो रही थी दिव्या का सामना करने की। बहन से अपार स्नेह रखने वाली दिव्या को इस समय तनु ही सम्भाल सकती थी।

"नहीं, यह ख़बर झूठी है। शरद को कुछ नहीं हुआ है। उसे कुछ हो ही नहीं सकता," दिव्या बड़बड़ा रही थी। आँसुओं का एक सैलाब उसके पूरे अस्तित्व को भिगो गया।

"सम्भव ही नहीं है। शरद कैसे जा सकता है? नहीं, नहीं, ऐसा अन्याय ईश्वर उसके साथ नहीं कर सकता।"

मेरे साथ अचानक तनु को अपने से अलग कर वह उठी और ऊपर अपने कमरे में जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। वह शायद अकेला रहना चाहती है। सब यही सोच रहे थे कि वह हमेशा की तरह इस बार भी अपने मनोभावों को दूसरों के सामने व्यक्त नहीं करना चाहती है।

तनु पीछे-पीछे जाने लगी तो रितेश ने उसे रोक लिया। "उन्हें अकेला छोड़ दो तनु। रो लेने दो उन्हें जीभर के। अभी वह कुछ भी समझने की अवस्था में नहीं हैं।"

दिव्या अपने कमरे की चौड़ी, खुली खिड़की के सामने जाकर कुछ देर तक खड़ी रही। बाहर केवल शोर था। भीतर और बाहर का शोर उसके मस्तिष्क को झिंझोड़ रहा था। उसे लग रहा था जैसे भीतर जमा गर्म लावा रिस रहा है और उसकी देह के साथ-साथ उसके मन को भी जला रहा है। अपने भीतर उठ रहे तूफ़ान का सामना करने के लिए उसने खिड़की बन्द कर दी और कमरे में रखे बड़े और आरामदायक सोफ़े पर स्वयं को धँसा दिया। उसका जिस्म काँप रहा था। मानसिक और शारीरिक थकान उसे अपने ऊपर हावी होती महसूस हुई। वह थकान उसके गहरे पैठते हुए उसकी आत्मा तक पहुँच रही थी।

जड़ता, एक गतिहीनता ने उसे दबोच लिया था। थोड़ी देर यूँ ही बैठी रही वह सदमे में। फिर सिसकियाँ फूटीं और वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। रोते हुए उसकी चीख़ें निकल रही थीं जिनकी आवाज़ नीचे तक जा रही थी। सहमे हुए माहौल में वे चीख़ें और भयावह लग रही थीं। नीचे एकत्र लोगों को डर था कि दिव्या अपने को कोई नुकसान न पहुँचा दे। शरद जैसा भी था, आख़िर था तो उसका पति ही। शरद के प्रति उन लोगों के मन में बेशक सम्मान न हो, कोई ख़ास लगाव भी न हो, पर दिव्या कैसे सहन कर सकती है उसका यूँ चले जाना ऊपर कमरे में जाने की कोई हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। दिव्या के पास होना तो चाहिए किसी को इस समय, हल्की-हल्की फुसफुसाहटों के बीच सब अपनी तरह से सोच रहे थे।

अचानक दिव्या उठी, मानो किसी बुरे सपने से जागी हो। उसने सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की खोल दी। बारिश शुरू हो गई थी। मुम्बई की बारिश कभी भी बरसने लगती है। सोंधी-सी ख़ुशबू वह महसूस कर पा रही थी। शोर मचाता एक फेरीवाला गुज़रा। बारिश के आ जाने से वह अपने भीग जाने की परवाह किए, माल के बिक जाने की चिन्ता से और तेज़ आवाज़ में माल बेचने की कोशिश कर रहा था। लता मंगेशकर की आवाज़ में गाया गाना, 'आज फिर जीने की तमन्ना है, आज फिर मरने की तमन्ना है' पता नहीं कहाँ बज रहा था जो दिव्या के कानों ने सुना। पड़ोस में तो कोई नहीं चलाएगा गाना, क्योंकि दिव्या के यहाँ सब शोक मनाने आ गए थे। दूरी पर बनी दुकानों में से किसी दुकान पर ही बज रहा होगा। वही फ़ुल स्पीड में गाना बजाते हैं।

उसे लगा वह बेसुध हो रही है। "मैं अब अपनी पसंदीदा लताजी का गाना हवा में झूमते सुन सकती हूँ, गा सकती हूँ," वह बुदबुदाई। उसके होंठों पर यकायक उसी गीत के बोल थिरकने लगे, "अपने ही बस में नहीं मैं/ दिल है कहीं, तो हूँ कहीं मैं/ जाने क्या पाया मेरी ज़िन्दगी ने/ हँस कर कहा/ आज फिर जीने की तमन्ना है।"

उसने बालकनी की तरफ़ खुलने वाले दरवाज़े को खोल दिया। एक क़तार में ढेर सारे गमलों में लगे फूल उसे थिरकते हुए महसूस हुए। आसमान में बादल मस्ती से अठखेलियाँ कर रहे थे। बारिश आने से वह एकदम स्वच्छ हो गया था। न जाने क्यों दिव्या को आज आसमान बहुत ख़ुश लगा। छोटा-सा बादल का टुकड़ा जाने अभी भी वहीं था, नज़र के टीके की तरह। वह टकटकी लगाए नीले आकाश पर विचरते एक धब्बे को देखने लगी, शायद कोई ठहरा हुआ बादल हो शायद वह बरसने की तैयारी कर रहा हो दिव्या के चेहरे पर, उसके जिस्म पर, उसके पूरे अस्तित्व पर एक सुकून पसर गया था। उसकी अनुभूतियाँ उससे कुछ कहने को व्याकुल हो रही थीं। साँस रोककर उसने एक गहरी साँस ली। कितना हलका महसूस कर रही है वह। हवा, ख़ुशबू, आसमान का विस्तार, लहराता गीत उसे हर चीज़ लुभा रही थी। किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं था। खुला-खुला लग रहा था, जैसे बेड़ियाँ

टूट गई हों। बहुत आज़ाद महसूस कर रही थी वह!

वह आकर आरामकुर्सी पर बैठ गई। नज़रें घुमाकर कमरे की हर चीज़ को देखा। फिर साँसों की आवाजाही पर ध्यान लगा दिया। धीरे-धीरे स्वर होंठों की क़ैद से छूट कर निकलने लगे, "मैं आज़ाद हूँ! मैं आज़ाद हो गई! मैं मुक्त हो गई! मैं उन्मुक्त हो गई! कितना हलका महसूस कर रही हूँ।"

अचानक वह चुप हो गई। एक ग्लानि उसे धिक्कारने लगी। 'कौन सोचता है ऐसा पति की मौत के बाद? शोक मनाने की बजाय वह थिरक रही है, उसका मन हिंडोले झूलने को व्याकुल है। छि, दिव्या यह ठीक नहीं है।

हाँ, ठीक तो नहीं है, पर

उसके आँसू सूख चुके थे। वह अपने धड़कते दिल की आवाज़ सुन पा रही थी। तेज़ चलती नब्ज़ को महसूस कर पा रही थी। शरीर में दौड़ते रक्त की चाल अनुभव कर पा रही थी। रूई जैसा हलकापन उससे लिपट गया था। पलभर उपजी ग्लानि को उसने बेरहमी से उतार फेंका। उसने अपने इस आनंद पर कोई सवाल नहीं किया। इस सुख को वह खोना नहीं चाहती थी।

यह भी सच था कि शरद की निष्प्राण देह को देखकर वह फूट-फूट कर रोएगी। उस चेहरे को निस्पंद देख उसके आँसू थमेंगे नहीं जिस पर उसने कभी कोमलता नहीं देखी थी। उसकी आँखों को देख वह शरद को टकटकी लगाए निहारेगी ज़रूर, जिन्होंने कभी उसे प्यार से नहीं देखा था। उसे हमेशा घूरती आँखों को बन्द देख उसका कलेजा फटेगा ज़रूर लेकिन उन क्षणों के परे वह अपनी ज़िन्दगी में किसी उत्सव के मनाए जाने की कल्पना कर रही थी। खुली बाँहों से वह आज़ादी का स्वागत करने के लिए बेचैन थी। वह आज़ादी जो शरद से शादी करने के बाद उससे छिन गई थी।

वह अब अपने लिए जी पाएगी। वह अब सिर्फ़ अपने लिए जीएगी। एक अजीब-सी खुशी उसके चारों ओर चक्कर लगा रही थी। खुशियाँ पाना कोई अपराध नहीं है, उसका मन उसे बार-बार कह रहा था। अब कोई उस पर अपनी मर्ज़ी नहीं थोप सकेगा, कोई उसके सपनों को निगलने के लिए हमेशा फुफकारता नहीं रहेगा, कोई उसकी देह को बिना उसकी इच्छा के भोगने का प्रयत्न नहीं करेगा। शरद से उसने नफ़रत तो नहीं की, लेकिन प्यार भी नहीं कर पाई थी। उसके ऊपर अधिकार भावना रखने की शरद की चाह ने कभी दिव्या को उसके क़रीब जाने ही नहीं दिया था।

"मैं आज़ाद पैदा हुई थी। मेरा शरीर और आत्मा स्वतन्त्र हैं!" वह बहुत ही शान्त स्वर में दोहरा रही थी।

"दीदी, प्लीज़ दरवाज़ा खोलिए," तनु कमरे के बन्द दरवाज़े को बेतहाशा पीट रही थी। वह डर रही थी कि दीदी कुछ कर न लें।

"हमें बहुत चिन्ता हो रही है। मैं तो आपकी लाड़ली हूँ न, मेरी बात मानिए, प्लीज़ दरवाज़ा खोल दीजिए।"

"मेरी चिन्ता मत करो। मैं अपने को नुक़सान नहीं पहुँचाऊँगी। तुम जाओ। मैं

कुछ देर और अकेले रहना चाहती हूँ।" दिव्या के दिमाग़ में विचारों का झंझावात उठ रहा था। बारिश थम चुकी थी।

'तनु मुझे नहीं समझेगी। तनु ही क्या कोई भी नहीं समझ पाएगा। इस समय मैं जैसे आश्चर्यलोक में विचर रही हूँ, उस पर चलकर कैसा अनुभव होता है, यह बात वह किसी क समझा भी नहीं सकती। यात्राएँ तो सबकी अपनी-अपनी होती हैं, इसलिए रास्ते भी ख़ुद ही तय करने पड़ते हैं।' उसने बन्द खिड़की को फिर से खोल दिया था। नीले आकाश से बादल छट चुके थे। कोई धब्बा नहीं था। उस विस्तार को देख उसे लगा कि जैसे उसकी ज़िन्दगी से भी सारे बादल छट गए हैं। वह हवा के हलकेपन को साँसों में भर नई मिली आज़ादी का आनंद लेने लगी।

उसकी कल्पना उसे न जाने कहाँ दौड़ाकर ले जा रही थी। वह गर्मी, सर्दी, बारिश, बसंत, पतझड़, हर दिन को अब अपने तरीक़े से जी सकेगी। कोई रोक-टोक नहीं, कोई ताना नहीं, कोई उलझन नहीं।

तनु अभी भी दरवाज़े के बाहर ही खड़ी थी। उसकी सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं। दिव्या ने दरवाज़ा खोल दिया। तनु उससे लिपट गई। दिव्या ने स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरा और तनु का हाथ पकड़ सीढ़ियाँ उतरने लगी। नीचे खड़े लोग हैरान-परेशान से दिव्या को देखने लगे। सांत्वना कैसे दें? कोई छोटी बात तो नहीं है जो यह कहने से कि 'सब ठीक हो जाएगा।' दिव्या को दिलासा दिया जा सकता है।

अचानक सबकी नज़र दरवाज़े की तरफ़ उठ गई। फटी टी-शर्ट और धूल-मिट्टी से गंदी हुई पैंट और चेहरे पर ख़रोंचों के निशानों के साथ शरद घर में घुसा। उसने बैग और छाता पकड़ा हुआ था, जिन्हें लेकर वह सुबह निकला था। जिस्म की थकान उसके पैरों को कमज़ोर बना रही थी। इसलिए लड़खड़ाते हुए चल रहा था।

"सुबह जब निकला तो ट्रैफ़िक में फँस गया। बस छूट गई जिसमें जाना था। दूसरी बस का इंतज़ार कर रहा था जब उस बस के दुर्घटनाग्रस्त होने की ख़बर सुनी। वापस घर आने के लिए ऑटो लिया तो उसका एक्सीडेंट हो गया। उलट ही गया था वह। ज़्यादा चोट नहीं आई मुझे। बस कुछ ख़रोंचे ही आई हैं।"

दिव्या को उसकी बातें सुन ऐसा लगा मानो उसके कान में कोई बम फटा हो। सारे लोग हतप्रभ से खड़े शरद को देख रहे थे। दिव्या और शरद की नज़रें एक-दूसरे से मिलीं। वे कुछ क्षण जो उसने खुली हवा में साँस लेते हुए जीए थे, उनमें धुआँ भरता महसूस हुआ उसे। दिव्या को लगा जैसे उसकी साँस घुट रही है। अचानक वह नीचे ज़मीन पर गिर पड़ी।

उसे पास के अस्पताल ले जाया गया। "कार्डियक अरेस्ट। शी इज़ नो मोर।" डॉक्टर ने कहा।

क्यों हुआ ऐसा? उसके सपनों के टूट जाने की वजह से या एक बार फिर से बेड़ियों में जकड़ जाने के भय से? या फिर शरद को देख मिलने वाली ख़ुशी की वजह से? पाठक की कल्पना पर छोड़ती हूँ! ❑



क़ालीन

गर्व की तरह होता है इसका बिछा होना
छुप जाती है बहुत सारी गंदगी इसके नीचे
आने वाले को दिखती है
सिर्फ़.आपकी सम्पन्नता और सुरुचि
इस तरह बहुत कुछ दिखाने
और उससे ज़्यादा छिपाने के काम आता है
क़ालीन

आम राय है कि क़ालीन बनता है ऊन से
पर ज़हीर अंसारी कहते हैं,
ऊन से नहीं जनाब, ख़ून से

ऊन दिखता है
चर्चा होती है, उसके रंग की
बुनाई के ढंग की
पर उपेक्षित रह जाता है ख़ून
बूँद-बूँद टपकता
अपना रंग खोता, काला होता चुपचाप

आपकी सुरुचि और सम्पन्नता के बीच
इस तरह ख़ून का आ टपकना
आपको अच्छा तो नहीं लगेगा
पर क्या करूँ, सचमुच वह ख़ून ही था
जो कबीर, अबीर, भल्लू और मल्लू की
अँगुलियों से
टपका था बार-बार



अरुण आदित्य

ई-मेल : adityarun@gmail.com

इस ख़ूबसूरत क़ालीन को बुनते हुए

पश्चाताप के ताप में इस तरह क्यों झुलसने लगे
जनाब?
आप अकेले नहीं हैं
सुरुचि सम्पन्ना के इस खेल में
साक्षरता अभियान के मुखिया के घर में भी
दीवार पर टँगा है एक ख़ूबसूरत क़ालीन
जिसमें लूम के सामने खड़ा है एक बच्चा
और तस्वीर के ऊपर लिखा है...
मुझे पढ़ने दो, मुझे बढ़ने दो

वैष्णव कवि और क्रान्ति-कामी आलोचक के
घरों में भी बिछे हैं ख़ूबसूरत क़ालीन
जिनसे झलकता है उनका सौन्दर्यबोध

कवि को मोहित करते हैं
क़ालीन में कढ़े हुए फूल-पत्ते
जिनमें तलाशता है वह वानस्पतिक गंध
और मानुष गंध की तलाश करता हुआ आलोचक
उतरता है कुछ और गहरे
और उछालता है एक वक्तव्यनुमा सवाल
जिस समय बुना जा रहा था यह क़ालीन
घायल हाथ, कुछ सपने भी बुन रहे थे साथ-साथ
क़ालीन तो बन-बुन गया
पर सपने जहाँ के तहाँ हैं
ऊन-ख़ून और खण्डित सपनों के बीच
हम कहाँ हैं?

आलोचक ख़ुश होता है
कि उत्तर से दक्षिण तक
दक्षिण से वाम तक
वाम से अवाम तक
गूँज रहा है उसका सवाल
अब तो नहीं होना चाहिए
कबीर, अबीर, भल्लू और मल्लू को कोई
मलाल। ❑

कविताएँ



एक छोटी-सी ख़ुशी

ओस की बूँद-सी होती है
एक छोटी-सी ख़ुशी
मृगमरीचिका-सी होती है
एक छोटी-सी ख़ुशी
चातक पक्षी का इंतज़ार
जब ख़त्म होता है
स्वाति नक्षत्र की बूँदों को पाकर
शायद यही होती है

एक छोटी-सी ख़ुशी
कलरव करती पक्षी की पुकार
किसी गोरी की पायल की झंकार
विरहिणी की वेदना का अंत
होती है एक छोटी-सी ख़ुशी
तालों में हँस-हँसनी का क्रंदन
नव्य लतिकाओं का आपस में आलिंगन
भँवरों का फूलों से लिया गया चुम्बन
होती है एक छोटी-सी ख़ुशी
बादल में इन्द्रधनुषी रंग का बिखरना
कानन में मयूर का नाचना
बाग़ों में फूलों का खिलना
नदियों का सागर से मिलना
होती है एक छोटी-सी ख़ुशी
निराश मन में आशा की ज्योति-सी
सीपी में पड़ी मोती-सी
भिखारी की झोली में छुपी रोटी-सी
होती है एक छोटी-सी ख़ुशी
रेगिस्तान में पानी की चमक-सी
निर्जन में अपनों की अनुभूति-सी
दुःख-दर्द में मरहम-सी
होती है एक छोटी-सी ख़ुशी
अधरों पे हँसी, नयनों में नमी
दे जाती है
एक छोटी-सी ख़ुशी।



मनोरमा गौतम
ई-मेल : manormagautam2110@gmail.com

थोड़ी अलग होती हैं

बुरी नहीं होती हैं
वो औरतें
बस औरों से थोड़ी अलग होती हैं
जो पहनती नहीं
पायल, बिछिया
या फिर मंगलसूत्र
लगाती नहीं माथे पे बिन्दिया
नहीं भरतीं वो माँग में सिन्दूर
भरा नहीं होता चूड़ियों से उनका हाथ
शायद इसलिए कि
वो जान चुकी हैं
इन सबके पीछे छुपा रहस्य
समझ चुकी हैं वो
उस गूढ़ अर्थ को
जो सदियों से
रीति-रिवाज की आड़ में
उन पर लादा जा रहा है
सुहाग-शृंगार की दुहाई दे
अनंतकाल तक
उसे बन्दिनी बनाकर रखने की। ❑



धान रोपती स्त्रियाँ

ऊपर आसमान में बादलों की आवाजाही
जैसे चल रहा हो
सूरज से आँखमिचौली का खेल
नीचे खेतों में कनई
कनई यानी मिट्टी में पानी का मेल

हँसती-खिलखिलाती
एक-दूजे पर तंज़ कसतीं
कमर में कसकर
आँचल लपेटतीं स्त्रियाँ
उतर पड़ी हैं लेव लगे खेत में

एक किनारे से दूसरे किनारे तक
अपनी-अपनी जगह तय करतीं
रोपाई के लिए तैयार हैं स्त्रियाँ

अजस्र भावों से भरे श्रमगीतों का
रस वहन करती हवा
ख़ुद भी स्त्रियों के स्वर में
स्वर मिलाने लगी है

समय की मार
तपते सूर्य का ताप
और कठिन श्रम से मुरझाये मुखमंडल
गाते-गाते दिपदिपाने लगे हैं

एक-एक क़दम पीछे की ओर ले जातीं,
और आगे लहरा उठते
जड़ से उखड़े पौधे

गाते-गाते
आँखों की कोरों में आई नमी छुपाती हैं
धान के पूँजों के साथ
जीवन और संगीत
रोप रही हैं स्त्रियाँ

जड़ से उखड़कर
पुनः जमना
बख़ूबी जानती हैं स्त्रियाँ।



वृंदा पांडेय
ई-मेल : drvinda@gmail.com

इतनी सी चाह

ये साँझ का धुँधलका
टहनियों के बीच अटका सूर्य अभी टपक जाएगा
लपक लेंगे सागर के हाथ
छिपा लेंगे गहरे अपने भीतर
बिखर जाएगी लाली सागर की सतह पर
जैसे किसी शरारती बच्चे ने उछाल दी हो
अपनी लाल गेंद
और वह डालियों पर अटकती-उछलती
गिर गई हो सागर की गोद में

साँझ अँधियारे का घूँघट डाले उतर गई है
धीरे-धीरे
उसके दामन पर टँक गए हैं सितारे
दिपदिपाने लगा है उसका साँवला मुख मंडल

लौट आए हैं कामगार अपनी झोपड़ियों में
परिन्दे अपने घोंसलों में
भूख भर भोजन और
सुकून भरी नींद की चाह में
बस इतना ही चाहिए उन्हें
हर दिन की पहली किरण से। ❑



पानी के लिए तरसती नहर

कभी कम
कभी बहुत ज़्यादा
कभी ठीक-ठाक
और कभी-कभी तो
होता ही नहीं है-
नहर की गोद में पानी

ऐसे में
बूँद-बूँद पानी के लिए तरसती नहर
बहुत भरोसे से देखती नदी की ओर
कि कुछ दया-उपकार हो जाए
ताकि जी सके-जाग सके
दौड़-भाग सके वह भी

लेकिन
नहर के दुःख से बेफ़िक्र नदी-
देख रही होती है समुद्र की ओर
समुद्र देख रहा होता है चाँद-सितारों की ओर
चाँद-सितारे देख रहे होते हैं
मनुष्य की घातक चालाकियाँ-
दूषित-बदबूदार मन की ओर

बहरहाल



खेमकरण 'सोमन'

ई-मेल : khemkaransoman07@gmail.com

दया-उपकार पर टिकी हुई ज़िन्दगी
बिलकुल-
नहर जैसी होती है।

जिस दिन लोगों के लिए

दुख, हताशा, पीड़ा-बेचैनी
लिपटना चाहते थे मुझसे

मैंने विनम्रता से कहा-
स्वागत, कभी मना किया तुम्हें

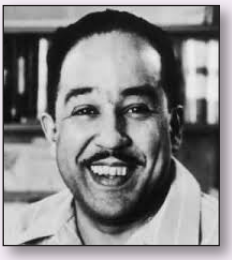
चारों अतिशीघ्र ही लिपट गए मुझसे
जैसे पेड़ से लताएँ
प्रेमियों से प्रेमिकाएँ
धरती से धूप
और ज़िन्दगी से ख़्वाब

चारों जानते थे
कि मैंने जन्म नहीं लिया इस धरा पर
ईर्ष्या-जलन भेदभाव करने या
किसी को थोड़ा भी नुक़सान पहुँचाने के लिए
तो ख़ाक मुझसे यारियाँ

चारों कुछ क्षण रुकें
कुछ क्षण सोचा-विचारा
फिर चले गए मुझे छोड़कर

मैं जानता हूँ
जिस दिन लोगों के लिए
बन जाऊँगा मनभावन-मनमोहक दृश्य
चारों आकर लिपट जाएँगे मुझसे-
हमेशा के लिए। ❑

लैंग्स्टन ह्यूज़ की अमरीकी कविताएँ



अनुवाद
बालकृष्ण काबरा 'एतेश'



ई-मेल : balkrishna.kabra2@gmail.com

सुनो! निर्माताओं!

सुनो!
सभी सौन्दर्य-निर्माताओं सुनो,
पलभर के लिए सुन्दरता को छोड़
देखो कठोरता को, देखो दर्द को
देखो जीवन को फिर से
देखो रोते हुए भूखे बच्चों को,
सुनो झूठ बोलते अमीर लोगों को,
देखो भूख से मरते चीन को
सुनो पूरब की गरजती आवाज़ को :
"सभी बातों के बावजूद
नहीं थमना चाहिए जीवन"
भारत में हाथ जोड़े हुए
चीन में बन्दूक़ों के साथ
अफ़्रीका में कटु मुस्कान के साथ –
देखो कहाँ चल रहा यह राग :
"नहीं थमना चाहिए यह जीवन
क्योंकि मोटे और लालची लोग
करते हैं प्रशंसा अपनी झूठी शान्ति की।"
उनकी शान्ति है युद्ध और मृत्यु से बदतर –
अतः ज़िन्दा साँसों से बेहतर है :
आज़ादी! आज़ाद हो जाना

सुनो!
निष्फल सौन्दर्य-निर्माताओं –
कुछ करो उनके साथ जो तोड़ते पिछले
प्रतिमान!
चलो साथ नव-विश्व निर्माताओं के :
है सौन्दर्य इसी में।

दो शान्ति हमें

दो शान्ति हमें युद्ध के बराबर
नहीं तो रहेंगी हमारी आत्माएँ असंतुष्ट
और सोचेंगे हम कि लड़े किसलिए
और क्यों मर गए कई

दो शान्ति हमें स्वीकारते हुए चुनौती –
ग़रीब की, अश्वेत की, सभी वंचितों की
चुनौती,
उस विशाल औपनिवेशिक दुनिया की
चुनौती
जहाँ दीर्घकाल में हुआ न्याय बहुत कम

दो शान्ति हमें जो दे चुनौती बुद्धिमान होने की
दो शान्ति हमें जो दे चुनौती शक्तिमान होने
की
दो शान्ति हमें जो दे चुनौती
बुराई के ख़िलाफ़ हमारी लड़ाई में शान्ति
क़ायम रखने की

दो शान्ति हमें जिसका न हो प्रयोग हल्के में,
शान्ति जो न हो किसी षड्यंत्र के लिए,
जन-जन की शान्ति जिसके लिए लोग करें
प्रोत्साहित,
शान्ति जो हमारे सपनों को कर दे सच

दो शान्ति हमें जिससे बने बड़े-बड़े
विद्यालय –
जैसे युद्ध में बने भारी हथियार,
शान्ति जो मिटा दे हमारी मलिन बस्तियों
को –
जैसे युद्ध ने मिटाया बुरा कर रहे हमारे
शत्रुओं को

दो शान्ति हमें जिससे मिले
मानव की सेवा करने वाली शक्तिशाली
सेना,
वह सेना नहीं जो केवल मारने को रहती
तैयार,
बल्कि जो हो प्रशिक्षित, लोगों की मदद को
तैयार

सेना जो हो प्रशिक्षित, दे जनहित को आकार
और जो ले आए सौहार्द का संसार।

स्वतन्त्रता जैसे शब्द

कुछ शब्द स्वतन्त्रता जैसे हैं होते
बोलने में मधुर, लगते ये निराले
स्वतन्त्रता करती गान हृदय में मेरे
दिनभर हर दिन

कुछ शब्द मुक्ति जैसे हैं होते
जो प्रायः मुझे रुला जाते
जो मैं जानता यदि वह तुम जान पाते
तो ऐसा क्यों, यह तुम जान जाते। ❑

यात्रा संस्मरण

गुलेरी की स्मृतियों को संजोए गुलेर

'उसने कहा था' के सुप्रसिद्ध लेखक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का बचपन अवश्य जयपुर के राजमहल में बीता लेकिन सैकड़ों मील दूर गुलेर में स्थित अपनी जड़ों को उन्होंने कभी भी विस्मृत नहीं किया। राजघराने में राजपुरोहित के कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी काँगड़ा की पहाड़ी बोली को नहीं भूले। वे बार-बार अपने पैतृक गाँव गुलेर आते रहे। काँगड़ा जनपद में पंजाबी भाषा का भी प्रभाव था क्योंकि उस ज़माने में यह महापंजाब का भाग था।



चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

गुलेर, काँगड़ा 15 मई 2023 की मई महीने की ख़ूब गर्म दोपहरी थी जब मैं अपने कथाकार दोस्त धर्मपाल साहिल के साथ गुलेर पहुँचा था। वे एक दिन पहले ही होशियारपुर से मेरे गाँव बल्ह राइटर्स कुटीर आए थे। उनकी ख़्वाहिश थी कि उस लेखक का गाँव, घर, धरोहर का अवलोकन किया जाए जिसकी एक कहानी ने हिन्दी साहित्य को वह नगीना दिया जिसकी चमक 108 साल बाद भी यथावत बरक़रार है। यानी कालजयी कहानी 'उसने कहा था' के रचनाकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का। हिमाचल के जनपद गुलेर की यात्रा हमीरपुर से महज़ 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुलेर पहुँचकर यकायक यह एहसास होता है कि आप किसी बियावाँ में आ गए हों।

सोया हुआ-सा, निर्जीव-सा इलाक़ा जहाँ दूर-दूर तक हलचल या गहमागहमी नदारद दिखी। आस-पास घने जंगल। ख़ूब हरियाली। दरअसल गुलेर एक बड़े क्षेत्रफल में फैला हुआ है जिसके तहत कई छोटे-बड़े गाँव हैं। एक ऐसा निर्जन स्थान जहाँ आप एक कप चाय पीने



राजेन्द्र राजन

ई-मेल : rajanhmr@gmail.com

के लिए तरस जाएँ। हाँ, काफ़ी मशक्कत के बाद गुलेर रेलवे स्टेशन के सामने एक ढाबा ज़रूर मिला।

मैं और साहिल गुलेर रेलवे स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर काफ़ी देर तक चहलक़दमी करते रहे। निर्मल वर्मा की कहानियों, उपन्यासों में जिस निस्तब्धता को बुना गया है उसकी जीवन्त मिसाल आप इस नैरोगेज रेल के प्लेटफ़ार्म पर देख सकते हैं। गुलेर का यही एक बेहद आकर्षक लैंडमार्क है। यहाँ स्टेशन के नाम की पीली विशाल पट्टिका के साथ खड़े होकर सैल्फ़ी लेना या फ़ोटो खिंचवाना मुझे प्रीतिकर लगा। सन्नाटे में डूबे प्लेटफ़ार्म ने मुझे और साहिल को रोमांच से भर दिया। चन्द गिने-चुने मुसाफ़िर ट्रेन की प्रतीक्षा में बेंचों पर विराजमान थे मानो वे मजबूरन रेल यात्रा कर रहे हों। ऐसा आभास होता है मानो लम्बे वक़्त या कई सालों से गुलेर स्टेशन पर किसी भी ट्रेन की गूँज न सुनाई दी हो। एक ज़माने में स्टीम इंजन की गूँज गुलेर के जंगलों की ख़ामोशी को भंग कर देती थी। अब डीज़ल इंजन की गड़गड़ाहट से लगता है कुछ देर के लिए ही सही, जीवन की धड़कनें लौट आई हों। यूँ टाइम-टेबल के मुताबिक़ पठानकोट से जोगिन्दर नगर तक चार ट्रेनें जाती हैं। चार ही लौटती हैं। कोई आधा घंटा तक हम नन्द किशोर परिमल की प्रतीक्षा करते रहे। गुलेरी वंशावली में चन्द्रधर के निकट सम्बन्धी। वे पुरोहित परिवार से ताल्लुक रखते हैं। गुलेरी जयपुर में पैदा हुए थे 7 जुलाई, 1883 को मगर यह महज़ अवधारणा है। ऐसा भी मत है कि वे गुलेर में ही पैदा हुए थे। गुलेर की जड़ों, ज़मीन, आबोहवा या फिर पैतृक परिवेश से उनका जुड़ाव या लगाव इस क़दर था कि जब तक जीवित रहे, अपने नाम के साथ उपनाम के रूप में अपने गाँव की ख़ुशबू के रूप में गुलेर को गौरवान्वित करते रहे। एक छोटे-से गाँव जो व्यास नदी के किनारे बसा है, को बतौर महान व मूर्धन्य साहित्यकार के रूप में देशभर या अंतरराष्ट्रीय फलक पर ख्याति प्रदान करने में चन्द्रधर शर्मा का योगदान अविस्मरणीय माना जा सकता है। उन्हीं की बदौलत गुलेर जनपद के अधिकांशतः



गुलेरी गाँव में गुलेरी का पुराना पैतृक घर

परिवार अपने नाम के साथ 'गुलेरी' उपनाम का प्रयोग कर गौरव का अनुभव करते हैं।

इससे पहले कि मैं आपको गुलेरी के गाँव गुलेर की मिट्टी में रची-बसी उनकी स्मृतियों से परिचय करवाऊँ, लगता है कि गुलेरी की व्यावसायिक और सृजनात्मक यात्रा के बारे में जानना ज़रूरी होगा। गुलेरी के पिता पण्डित शिवराम शास्त्री मूलतः हिमाचल प्रदेश के गुलेर गाँव के निवासी थे। वे राज सम्मान प्राप्त करके जयपुर में बस गए थे। उनकी तीसरी पत्नी लक्ष्मी देवी ने चन्द्रधर को जन्म दिया था। चन्द्रधर को घर में ही संस्कृत भाषा, वेद, पुराण आदि के अध्ययन, पूजा-पाठ, संध्या वंदन, धार्मिक कर्मकाण्ड का वातावरण मिला। उन्होंने अंग्रेज़ी में शिक्षा प्राप्त की। प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के बाद गुलेरी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. किया।

जब वे बीस साल के थे तो जयपुर की वेधशाला के शोधकार्य एवं जीर्णोद्धार के लिए एक संस्था में उन्हें चुना गया। कैप्टन गैरंट के सहयोग से गुलेरी ने 'द जयपुर ऑब्ज़रवेटरी एण्ड इट्स बिलडर्स' नाम से अंग्रेज़ी पुस्तक की रचना की। जयपुर में ही 1900 में नागरी मंच की स्थापना की। 1902 में 'समालोचक' पत्रिका का सम्पादन सम्भाला। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सम्पादन मंडल में भी वे रहे। जयपुर के राजपण्डित कुल में जन्म लेने वाले गुलेरी का राजवंशों से ज़ाहिरी तौर पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। पहले वे खेतड़ी नरेश जयसिंह, फिर सामन्त पुत्रों के मेयो कॉलेज अजमेर में अध्ययन के लिए उनके अभिभावक रहे। 1916 में उन्होंने 'मेयो कॉलेज' के संस्कृत विभाग का अध्यक्ष पद सम्भाला। 12 सितम्बर, 1922 को पीलिया के बाद तेज़ ज्वर से मात्र 39 वर्ष की अल्पायु में गुलेरी का निधन हो गया।

गुलेरी अपने समय के बड़े निबन्धकार थे। तीन या चार कहानियाँ लिखीं। 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का काँटा' और 'उसने कहा था।' उनकी एक अधूरी कहानी 'हीरे का हीरा' को भी कुछ लेखकों ने खोज निकाला लेकिन 'उसने कहा था' ने जो उन्हें ख्याति प्रदान की उसने उनकी बाक़ी सभी रचनाओं की चर्चा को गौण कर दिया। उनकी दीगर उपलब्धियों पर हिन्दी-जगत का ख़ास ध्यान नहीं गया। विगत 108 सालों में कहानी 'उसने कहा था' पर ही चर्चाएँ केन्द्रित रहीं। मूलतः गुलेरीजी सामाजिक बदलाव के पक्षधर थे। राजवंश में रहते हुए सत्ता की ज़ंजीरें उन्हें जकड़ न पाईं। अपने आलेखों, आलोचना और तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक हलचलों पर अपनी बेबाक टिप्पणियों को अगर ग़ौर से देखें तो इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं है कि वे बीसवीं सदी के पहले दो दशकों में क्रान्तिकारी विचारों के प्रतिपादक थे। वे बाल विवाह के कट्टर विरोधी थे और स्त्री शिक्षा के समर्थक। सहशिक्षा की वकालत की। अशिक्षा, अंधविश्वासों पर वे बार-बार प्रहार करते रहे और अपनी क़लम के माध्यम से समाज को जागृत करने में प्रयासरत रहे।

गुलेरीजी धर्मनिरपेक्षता के समर्थक थे। उनके अनुसार उदारता, सौहार्द और मानवतावाद धर्म के प्राण बिन्दु हैं। हिन्दू, सिक्ख, जैन, पारसी, मुसलमान सबमें सद्भाव के वे पक्षधर रहे। संकीर्ण धर्म

शिक्षा के विरुद्ध थे। अर्थहीन कर्मकाण्डों, ज्योतिष से जुड़े अन्धविश्वासों का वे बार-बार खण्डन करते रहे।

इससे पूर्व कि परिमलजी गुलेरी की धरोहर, स्मृतियों के पन्ने खोलते, उन्होंने हमें 'बछोह' नाम की ऐसी बावड़ी दिखाई जो गुलेर के इतिहास में मिसाल के रूप में पेश की जाती है। सदियों पुरानी इस बावड़ी के पानी के प्रति आस-पास के गाँवों का खिंचाव बरक़रार है। इसका संरक्षण क़ाबिले-तारीफ़ है। दूर पार से लोग पीने का पानी भरने के लिए यहाँ पंक्तिबद्ध होते हैं। पहाड़ों में पुराने पारस्परिक जलस्त्रोतों के प्रति लोगों का आकर्षण बरक़रार है। बावजूद इसके कि पहाड़ी प्रान्त में शायद ही कोई गाँव ऐसा हो जहाँ नल से जल न पहुँचा हो। जब चन्द्रधर जयपुर से गुलेर आते तो गाँव पहुँचकर बछुए पर स्नान करके, धोती पहनकर तथा रामनवमी ओढ़कर, छोटे-बड़े अमीर, ग़रीब सभी के घर जाकर उन्हें अभिवादन करते। वैसे बावड़ी का सही नाम 'वत्सकूप' है। 'वत्सेश्वर' यानी 'शिवजी का कुआँ'। स्थानीय बोली में इसे 'बहा' यानी 'बच्चा कूओं' कहा जाता है। अब बारी थी गुलेरी की धरोहर को देखने की। हमें उस खण्डहरनुमा मकान को देखकर घोर निराशा हुई जो दो सदी पहले पण्डित शिवराम का कच्चा मकान था। इसका नाम चन्द्रभवन है। वे 1875 या 1880 के आस-पास गुलेर को छोड़कर काशी चले गए थे। शिक्षा-दीक्षा और रोज़गार की तलाश में पुरोहितचारी और ज्योतिष में अनन्य विद्धवता से प्रभावित होकर जयपुर के राजा कांशी से उन्हें राजपुरोहित के रूप में जयपुर ले गए।

परिमलजी ने हमें वह विशाल परिसर दिखाया जहाँ गुलेरी और पुरखों की सज्दा कहीं जर्जर तो कहीं अत्यन्त शोचनीय हालत में है। मिट्टी का टूटा-फटा घर, गिरते स्लेट स्टोर, आँगन, रसोई बाग़-बग़ीचों की दुर्दशा देखकर लगता है गुलेरी के वारिसों की इस महान व मूर्धन्य लेखक की बहुमूल्य धरोहर के प्रति उदासीनता बनी हुई है। कभी-कभार मकान खुलता है तो हवाएँ उसके दरों-दीवारों को स्पर्श कर पाती हैं। यह एक कच्चा-पक्का बड़ा-सा दोमंज़िला मकान है जिसकी दीवारों से पलस्तर झर रहा है। छतें कमज़ोर हो चुकी हैं। उसके ध्वस्त होने का ख़तरा बना हुआ है। घर का आँगन हो या पिछवाड़ा, उजाड़ ही उजाड़।

पता चला 100 या 150 साल पहले जब यहाँ कच्चा मकान था तो यहाँ व्यास नदी में नाव चलाने वाले मल्लाह ठहरते थे। अब ये पौंग बाँध का इलाक़ा है। इसे 'डंक हाउस' भी कहा जाता था। यानी अगर कोई सर्पदंश का शिकार हो जाए तो यहाँ साँप की मणि से



गुलेरी का नया जर-जर मकान



उसका ज़हर सोख लिया जाता था। साँप के डसे का उपचार करने का यह सदियों पुराना टोटका रहा है। ख़ासकर पहाड़ों में। जितने मुँह उतनी बातें। अपनी डायरी के एक पन्ने पर गुलेरीजी लिखते हैं, "मेरा मकान बन्द रहता है। वह तभी खुलता है जब मैं अवकाश व्यतीत करने यहाँ आता हूँ। उक्त छोटे-से गाँव गुलेर में मकान को किराए पर देने की कोई व्यवस्था नहीं है।"

परिमलजी बताते हैं, "गुलेरीजी ने राजा जयपुर के दरबार से अपने पिता पंडित शिवराम शास्त्री की विरासत, परम्परा को जारी रखा था। उन्हें भी राजवंश में राजपुरोहित की पदवी से सुशोभित किया गया था। जयपुर से पठानकोट तक वे रेल में आते थे। वहाँ से मीलों लम्बा सफ़र पालकी, ताँगे या बग्घी में तयकर गुलेर पहुँचते थे। जब गुलेरीजी का विवाह तय हुआ तो जयपुर के राजा ने उनके पिता पंडित शिवराम शास्त्री को गुलेर पहुँचने और ब्याह के ख़र्चे के लिए 500 रुपये दिए थे। जहाँ शादी तय थी उस घर में लड़की के पिता की मृत्यु हो गई। शादी हो न पाई। फिर हरिपुर गाँव में पद्मावती नाम की लड़की से उनका विवाह हुआ।"

परिमलजी हमारे सूत्रधार रहे। गुलेरीजी से जुड़ी स्मृतियों के पन्ने खोलते रहे। दूसरा क़िस्सा कुछ यूँ है कि गुलेर के राजा बलदेव सिंह का राज्याभिषेक होना था लेकिन हमारे ख़ानदान में राजपुरोहित का निधन हो चुका था। पुरोहित की गद्दी कीर्तिधर शर्मा गुलेरी को सौंपी जानी थी लेकिन वे किशोरावस्था में थे। अतः चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को जयपुर से बुलाया गया। उन्होंने बालक कीर्तिधर को अपनी गोद में बिठाकर उसी के हाथों से राजा बलदेव को टीका लगाकर राज्याभिषेक किया था। वे अपने परिवार में से भी किसी को राजा गुलेर के राजपुरोहित की पदवी सौंप सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। उल्लेखनीय है कि पंडित शिवराम जयपुर के राजा के तो राजपुरोहित थे ही, गुलेर रियासत के राजा के राजवंश में भी सदियों से राजपुरोहित की परम्परा चली आ रही थी लेकिन गुलेरीजी ने अपनी वंशावली में ही चाचा के लड़के कीर्तिधर शर्मा को राज ज्योतिष की पदवी सौंप कर उदारता का परिचय दिया।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की वंशावली में पीयूष गुलेरी ने लेखन के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की है। दिवगंत पीयूष गुलेरी हिन्दी व पहाड़ी भाषा के मूर्धन्य रचनाकार थे। गुलेरी के समग्र साहित्य को संचयन कर उसे साहित्य अकादेमी व अन्य प्रकाशन संस्थानों से प्रकाशित करवा कर उनकी बहुमूल्य धरोहर के संरक्षण व प्रचार-प्रसार में उनका अद्धितीय योगदान रहा है। गुलेरी के पोते विद्याधर गुलेरी एवं उनकी वंशावली में एक

अग्रणी लेखक प्रत्यूष गुलेरी ने भी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के साहित्य के संरक्षण, संवर्धन व प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान किया है।

गुलेरीजी का बचपन अवश्य जयपुर के राजमहल में बीता लेकिन सैकड़ों मील दूर गुलेर में स्थित अपनी जड़ों को उन्होंने कभी भी विस्मृत नहीं किया। राजघराने में राजपुरोहित के कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी काँगड़ा की पहाड़ी बोली को नहीं भूले। वे बार-बार अपने पैतृक गाँव गुलेर आते रहे। काँगड़ा जनपद में पंजाबी भाषा का भी प्रभाव था क्योंकि उस ज़माने में यह महापंजाब का भाग था।

जयपुर में अपने परिवार में रहते हुए उनकी बोलचाल की भाषा पहाड़ी ही थी जिसे ज़ाहिरी तौर पर उन्होंने अपने पिता व माता से ग्रहण किया था। 'बुद्ध का काँटा' कहानी में गुलेर का परिवेश परिलक्षित हुआ है। किस प्रकार वे कभी ताँगे पर तो कभी इक्के पर गुलेर पहुँचते हैं तो कभी पालकी में। गुलेर से उनके आत्मिक लगाव का परिचय उनकी कहानियों में मिलता है। चाहे वह 'उसने कहा था' हो या 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का काँटा' हो या 'हीरे का हीरा' लेकिन बहुत से आलोचक 'हीरे का हीरा' को पूर्ण रचना ही मानते रहे। साहित्य में विवाद-विमर्श व असहमतियों को चोली-दामन के साथ की तरह माना जाता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को हिन्दी साहित्य में जो मान-सम्मान मिलना चाहिए था वह उन्हें अवश्य मिला। महज़ एक कहानी 'उसने कहा था' के कालजयी व सार्वकालिक होने के कारण।

प्रेम और त्याग का जो आलौकिक, अद्‌भुत व अद्धितीय निरूपण 'उसने कहा था' में हुआ है, वैसा शायद 150 साल की हिन्दी कहानी की यात्रा में विरले ही देखने को मिलता है। ऐसा माना जाता है जिस लड़की से गुलेरी का विवाह हुआ था उसके सौन्दर्य से वशीभूत होकर ही शायद उन्होंने उस किरदार को गढ़ा जिसका परिवेश अमृतसर का बज्बूकार्ट है। लड़की, लाजो अपने मामा के घर गई है जहाँ, बाज़ार में उसकी मुलाक़ात युवा लहनासिंह से होती है। तेरी कुड़माई हो गई? या फिर धत्त तेरे की, जैसे संवाद इस कहानी के प्राणबिन्दु हैं जिन्हें गुलेर से सैकड़ों मीलों दूर बसे अमृतसर के लोकेल में गढ़ा गया है। यह कहानी पहले विश्वयुद्ध से प्रेरित है। 150 साल पूर्व गुलेर का समूचा क्षेत्र साँझे पंजाब का हिस्सा था। ज़ाहिर है गुलेरी अपने गाँव के आस-पास प्रथम विश्वयुद्ध के वास्तविक चरित्रों से प्रेरित हुए हों। ऐसा मत है कि बचपन या किशोरावस्था में चन्द्रधर अमृतसर गए थे। पंजाबी लहजे, लोक व जीवन को उन्होंने आत्मसात किया था। इसी कारण अमृतसर के बज्बूकार्ट के दृश्य इस कहानी में जीवन्त हुए हैं।

गुलेरीजी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिन्दी की एक उत्तम कृति है। इस चरित्र-प्रधान कहानी में जमादार लहनासिंह के निश्छल प्रेम और बलिदान का सुन्दर चित्रण है। अमृतसर के बाज़ार में लहनासिंह का परिचय एक भोली बालिका से हो जाता है। लहनासिंह उससे प्रेम करने लगता है, पर कुछ समय पश्चात् उस बालिका का विवाह कहीं और हो जाता है और लहनासिंह उसे

भूल जाता है। लहनासिंह सेना में जमादार के पद पर भर्ती हो जाता है। लड़ाई पर जाने से पहले वह अपने सूबेदार हज़ारासिंह के घर जाता है। वहाँ उसे पता लगता है कि सूबेदारनी वही लड़की है जिसे वह बचपन में प्रेम करता था। सूबेदारनी अपने पति तथा पुत्र बोधासिंह की रक्षा का भार लहनासिंह को सौंप देती है। युद्धस्थल में लहनासिंह सूबेदार तथा बोधासिंह की रक्षा करने में अपने प्राण दे देता है। उसे संतोष है कि उसने अपना कर्त्तव्य निभाया है। 'उसने कहा था' में पंजाबी और पहाड़ी यानी कागड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग हुआ है। लहनासिंह, हज़ारा सिंह, बौधा सिंह जैसे किरदार काँगड़ा से ताल्लुक़ रखते प्रतीत होते हैं। यहाँ से ब्रिटिश हुकूमत ने बहुत से सैनिकों को प्रथम विश्वयुद्ध में फ्रांस और बैल्जियम की रक्षा के लिए युद्ध में भेजा था।

गुलेर में गुलेरी की धरोहर व सज्जादा के किसी शानदार संग्रहालय की शक्ल देकर उसे भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करने का बीड़ा उठाना चाहिए। गुलेरी जयन्ती के अवसर पर उनके परिजनों को आमन्त्रित कर उन्हें मान-सम्मान मिलना चाहिए जिसके वे सही मायने में हक़दार हैं। प्रेमचन्द हों या मुक्तिबोध, निराला हों या यशपाल, किसी भी महान व मूर्धन्य लेखक की स्मृतियों को बचाए रखने की परिकल्पना या पहल विरले ही देखने को मिलती है। अलबत्ता, उत्तराखण्ड में नैनीताल के समीप रामगढ़ में स्थापित महादेवी वर्मा और शैलेश मटियानी की स्मृति में बनाए गए संग्रहालयों को देखकर सन्तोष और प्रसन्नता का भाव अवश्य जागृत होता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के नाम पर गुलेर के समीप हरिपुर में राजकीय डिग्री कॉलेज का नामकरण अवश्य हुआ है। तमाम विरोधाभासों के बावजूद उनके नाम पर गुज़िश्ता सदी के अंत में 'चन्द्रधर शर्मा गुलेरी राज्य सम्मान' आरम्भ किया गया था जिसे चन्द लेखकों को प्रदान करने के बाद 2007 में स्थायी रूप से या तो ठण्डे बस्ते के हवाले कर दिया गया या फिर उसकी अहमियत को विस्मृत कर दिया गया। यह सम्मान हिमाचल सरकार के भाषा व संस्कृति विभाग ने स्थापित किया था जो अब 16 साल से 'विस्थापित' है।

गुलेर में नन्द किशोर परिमल के आवास पर चन्द्रधर शर्मा की पुस्तकों, उनके दुर्लभ चित्रों व धरोहर का अवलोकन करने और बातचीत के बाद हम हमीरपुर लौट आए। दूर पौंग बाँध के पीछे मीलों तक फैले व्यास नदी के विशाल, हरे-भरे लैंडस्केच पर मेरी और साहिल की निगाह बार-बार टिक जाती। गुलेर के ध्वस्त राजमहल की छत पर खड़े होकर पौंग बाँध को देखना अभिभूत कर जाता है। राजस्थान के करोड़ों बाशिन्दों की प्यास बुझाने के लिए 1971 में बेशुमार गाँव जलमग्न हो गए थे। गुलेर व इसके इर्द-गिर्द के गाँवों में पसरा सन्नाटा इस बात का प्रतीक है कि गुलेर से सटे गाँवों ने भी विस्थापन के दंश को शिद्दत से झेला है।

गुलेर भले ही अपनी ऐतिहासिक विरासत, राजमहलों, काँगड़ा चित्रकला शैली को विस्मृत कर चुका हो, लेकिन यह बात भी कम हैरत अंगेज़ नहीं है कि यहाँ की सरज़मीं को एक लेखक की क़लम से विशिष्ट व

अविस्मरणीय पहचान मिली। गुलेर को लोग आज उसके राजाओं या महलों से याद नहीं करते अपितु एक ऐसे लेखक की रचनाओं से स्मरण करते हैं जिसने देश व दुनिया के साहित्य के नकशे पर गुलेर को चर्चित किया।

'उसने कहा था' पर 1960 में एक फ़ीचर फ़िल्म का निर्माण भी हुआ था। इसका निर्देशन विमल रॉय ने किया था लेकिन मूल कहानी में प्रेम और त्याग का जो विलक्षण निरूपण है, फ़िल्म में उसका विरूपित रूप सामने आया। गुलेरी के नाम पर विश्वविद्यालय स्तर पर कोई सृजन पीठ नहीं है। उनके नाम पर कोई बड़ा संस्थान या विश्वविद्यालय भी नहीं है। हाँ, यशपाल के नाम पर हमीरपुर के समीप नादौन में एक संस्कृति सदन ज़रूर है जो अनदेखी, उदासीनता के कारण कमोबेश मुर्दाघर में तब्दील होने की कगार पर है।

निर्मल वर्मा भी शिमला में पैदा हुए थे। उन्हें भी हिमाचल के खाते यानी धरोहर में डाला तो ज़रूर गया है लेकिन उनकी जयन्ती पर उन्हें कोई याद नहीं करता। गुलेर के अतीत में झाँके तो पता चलता है कि 1405 में राजा हरीचन्द ने गुलेर सियासत की नींव रखी थी। तब हरिपुर इसकी राजधानी थी लेकिन सदियों पुराना महल खण्डहर में तब्दील हो चुका है। महल तक पहुँचने की हिमाक़त कोई नहीं करता। गुलेर को भले ही आज गुलेरी से जाना जाता है, मगर 17वीं व 18वीं सदी में पहाड़ी लघुचित्रकला शैली का विकास गुलेर जनपद में हुआ था। इसे राजा संसार चन्द ने पल्लवित किया था जिसे 'काँगड़ा चित्रकला' के नाम से भी जाना गया। राजा हरीचन्द ने हरिपुर गुलेर के आस-पास महल, मन्दिरों व गुफाओं का निर्माण करवाया लेकिन उनके संरक्षण की व्यवस्था न होने के कारण वे कालातीत से हो चुके हैं।

गुलेर, हरिपुर व इसके आस-पास छोटे-छोटे गाँवों में करीब 500 परिवार बसे हुए हैं। आबादी करीब 2000 के आस-पास है। गुलेरी के वंशजों या सम्बन्धियों में नन्द किशोर परिमल और बृजेश गुलेरी 'चन्द्रभवन' के पास ही अपने पुश्तैनी मकानों में रहते हैं। प्रत्यूष व पीयूष भी गुलेर में अपनी जड़ों से जुड़े रहे हैं।

सुखद पहलू यह है कि नन्द किशोर परिमल ने गुलेरीजी की कहानी 'उसने कहा था' की हस्तलिखित व रफ़ ड्राफ़्ट को संरक्षित किया हुआ है। यह सचमुच गर्व का विषय है कि अधिकांश लोगों ने यहाँ अपने गोत्र व जातियों को अपने नाम के पीछे सुशोभित करने की बजाय गुलेर गाँव की धरोहर व ख़ासकर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अवदान से प्रेरित होकर उपनाम गुलेरी का प्रयोग करना उचित समझा। उपनाम के साथ गुलेरी का प्रयोग वास्तव में चन्द्रधर शर्मा जैसे महान, मूर्धन्य साहित्यकार के प्रति आदर-भाव का प्रतीक है। निश्चित रूप से आज गुलेर को साहित्यिक तीर्थ का दर्जा प्राप्त है। विद्वानों, शोधार्थियों व सैलानियों का गुलेर के प्रति आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ रहा है मगर यहाँ उनके पैतृक परिसर में उनकी स्मृति में संग्रहालय की दरकार है जिसे साकार करने के लिए सरकार व लेखक समाज का दायित्व बनता है। ❑

इतिहास और विकास

भाषाओं के विकास का अध्ययन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ऐतिहासिक दस्तावेज़ों तथा साहित्य के ज़रिए किया जाता है। इसमें भी मुख्य स्रोत साहित्य है। सन् 1000 के बाद भारत की विभिन्न आधुनिक भाषाओं के आदिरूपों में साहित्य मिलना आरम्भ हो जाता है। धीरे-धीरे दो-तीन सदियों बाद इस साहित्य की संख्या तथा इसमें भाषा का बढ़ा हुआ विकसित रूप भी परिलक्षित होता है।

हिन्दी भाषा और देवनागिरी लिपि

हिन्दी भाषा का विकास पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ है। यह उसी देवनागिरी लिपि में लिखी जाती है, जिसमें संस्कृत भाषा। हिन्दी भाषा खड़ी बोली हिन्दी से विकसित हुई है। खड़ी बोली कौरवी क्षेत्र की बोली है। यह मुख्य रूप से पश्चिमी उत्तर प्रदेश व हरियाणा क्षेत्र की बोली है। मध्य युग में उर्दू-फ़ारसी शब्दों और व्याकरण के मूल से इसी खड़ी बोली ने उर्दू का रूप लिया। 19वीं सदी में नागरी लिपि संस्कृत, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, उर्दू, राजस्थानी आदि बोलियों के व्यापक शब्द भंडार को अपनाते हुए हिन्दी भाषा ने अपना परिनिष्ठित विकास किया। इस भाषा की जड़ें पाली, प्राकृत और अपभ्रंश तक जाती हैं।

भाषा वैज्ञानिकों ने भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन उनके शब्द-भंडार, धातुरूप, व्याकरण तथा वाक्य-विन्यास के आधार पर करके दुनियाभर में मौजूद लगभग तीन हज़ार भाषाओं को निम्नलिखित भाषाई समूहों में विभाजित किया है–

1. द्रविड़ परिवार
2. चीनी एकाक्षरी परिवार
3. सेमेटिक-हैमेटिक परिवार
4. यूराल-अल्ताइक परिवार



आलोक श्रीवास्तव

ई-मेल : samvad.in@gmail.com

5. काकेशियन परिवार
6. जापानी-कोरियाई परिवार
7. मलय-पालिनेशियन परिवार
8. ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार
9. बुशमैन परिवार
10. बाँटू परिवार
11. सूडान परिवार
12. अमरीकी परिवार
13. भारोपीय परिवार।

भाषा-परिवारों का यह विभाजन क्षेत्र, शब्द-सम्पदा, लिपि, ध्वनि आदि के ऐतिहासिक विकास के आधार पर किया गया है। इनमें भारोपीय परिवार सबसे बड़ा और विस्तृत भाषा-परिवार है। हिन्दी भाषा इसी भारोपीय परिवार की एक सदस्य है। भारोपीय भाषा परिवार में उत्तरी भारत, अफ़ग़ानिस्तान, बांग्लादेश, पाकिस्तान, ईरान, ताजिकिस्तान, रूस, मध्य एशिया के अनेक देश, रूमानिया, पोलैंड, इटली, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेन, इंग्लैंड, जर्मनी तथा अमरीका, अफ्रीका ऑस्ट्रेलिया के अनेक हिस्से आते हैं। जिन देशों का ज़िक्र किया गया है, यह आवश्यक नहीं है कि उन देशों में पूरी तरह से एक ही परिवार की भाषाएँ प्रचलित हों। उदाहरण के लिए प्रचलित संथाली, मुंडारी भाषाएँ आस्ट्रो भारत में एशियाटिक परिवार की भाषाएँ हैं। भारोपीय नाम का कारण यह है कि ये भाषाएँ मुख्यतः भारतीय उपमहाद्वीप तथा यूरोप व उससे लगे एशियाई क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

यह माना जाता है कि भारोपीय परिवार की सभी भाषाएँ किसी एक स्रोत से हज़ारों साल पहले जन्मी होंगी। ज़ाहिर है कि स्रोत एक रहा होगा तो क्षेत्र भी एक ही रहा होगा। भाषा-विज्ञानी ब्रांदेश्तीन का मत काफ़ी मान्यता प्राप्त है, इसके अनुसार यूराल पर्वत के दक्षिण-पूर्व में किरगीज़ के मैदानी भागों में मूल भारोपीय भाषा का जन्म हुआ। यहाँ के लोग जब प्रशाखाओं में बँट कर अलग-अलग क्षेत्रों में बस गए तो वहाँ की जलवायु, नई जीवन स्थितियों तथा सभ्यतागत विकास से इस भाषा ने अलग-अलग रूप धारण कर लिया और इस प्रकार से कई स्वतन्त्र भाषाओं के आदिरूप विकसित हुए। ये स्वतन्त्र आदि भाषाएँ पुनः इसी तरह प्रवास व विकास जनित कारणों से नई भाषाओं में विकसित हुईं।

आर्यों की सबसे प्राचीन भाषिक रचना का ग्रंथ 'ऋग्वेद' है। 'ऋग्वेद' की रचना किसी एक व्यक्ति ने किसी एक काल में नहीं की थी। यह सदियों तक रचा गया और पीढ़ियों द्वारा कंठस्थ कर सुरक्षित रहा। अतः इसमें भाषा का एक रूप नहीं मिलता। यह उत्तर में रचा गया पर उत्तरी क्षेत्र विशाल है- कंधार से सिन्धु तक। इसमें विभिन्न भूगोलों का समावेश है। बाद में इसमें भाषिक व कथ्यगत एकरूपता लाई गई। आचार्य श्याम सुन्दर दास के अनुसार, "ज्यों-ज्यों आर्यगण अपने आदिम स्थान से फैलने लगे और तत्कालीन अनार्यों से सम्पर्क बढ़ाने लगे त्यों-त्यों भाषा भी विशुद्ध न रहकर मिश्रित होने लगी। विभिन्न स्थानों के आर्य विभिन्न प्रकार के प्रयोग काम में लाते थे। कोई 'क्षुद्रक' (छोटा) कहता था तो कोई 'छुल्लक'। 'तुम दोनों' के लिए कोई 'युवाँ बोलते थे, कोई 'युवँ' और कोई केवल 'वाँ'... आदि आदि अनेक रूप बोले जाते थे। कुछ लोग विभक्ति न लगाकर केवल प्रातिपदिक का ही प्रयोग कर बोलते थे, (यथा 'परमे व्योमन्') तो कुछ शब्द के ही अंग-भंग करने पर सन्नद्ध थे। 'आत्मना' का 'त्यना' इसका अच्छा

निदर्शन है। कोई व्यक्ति किसी अक्षर को एक रूप में बोलता तो दूसरा दूसरे रूप में... इस प्रकार विषमता उत्पन्न हुई और एक स्थल के आर्यों को अन्य अन्य स्थल के अधिवासी अपने ही सजातियों की बोली समझने में कठिनता होने लगी। तब उन लोगों ने मिलकर अपनी भाषा में व्यवस्था करने का उद्योग किया। प्राण्तीयता का मोह छोड़कर सार्वदेशिक सर्वबोध्य और अधिक प्रचलित शब्द ही टकसाली माने गए। भाषा प्रादेशिक से राष्ट्रीय बन गई।"

इस प्रकार से संस्कृत का उदय हुआ। वैदिक कालीन संस्कृत का रूप अलग है और गुप्त काल में, जब संस्कृत साहित्य के ग्रंथों का बड़े पैमाने पर प्रणयन हुआ, संस्कृत का रूप अलग है। कालिदास, बाणभट्ट, माघ, अश्वघोष, भारवि आदि संस्कृत के महान रचनाकारों से हम परिचित हैं। इनकी संस्कृत भाषा वैदिक संस्कृत से भिन्न है परन्तु गुप्त काल तक आते-आते संस्कृत का एक रूप स्थिर हो गया था तथा यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि गुप्त काल में या आज से दो-तीन हज़ार वर्ष पूर्व भी भारत के उत्तर और दक्षिण में, पूर्व और पश्चिम में अलग-अलग क्षेत्रों में ढेरों भाषाएँ बोली जाती रही होंगी, जो समय के साथ विलुप्त हो गईं।

संस्कृत को दो भागों में बाँटा गया है। ई. पू. 1500 से 800 ई. पू. तक का युग वैदिक संस्कृत का युग है। सभी वेद, उपनिषद, आरण्यक आदि ग्रंथ इस संस्कृत में लिखे गए हैं। इसका अपना विशिष्ट व्याकरण व शब्द भंडार था। 800 ई. पू. से 500 ई. पू. तक का काल लौकिक संस्कृत का काल है। यही संस्कृत साहित्यिक संस्कृत के रूप में विकसित हुई है। वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में मानकी करण तथा कुछ ध्वनियों और शब्द रूपों का अंतर है जिससे उच्चारण और अर्थ भिन्नता पाई जाती है। पाणिनी नाम के एक बड़े व्याकरणाचार्य हुए हैं। हिन्दी के प्रख्यात लेखक वासुदेव शरण अग्रवाल ने इन्हीं पाणिनी के भाषा सम्बन्धी अनुसंधान को आधार बना कर 'पाणिनीकालीन भारत' नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसके ज़रिए भाषा का विकास, भौगोलिक क्षेत्र में उसका विस्तार, उसमें होने वाले परिवर्तनों का इतिहास अत्यंत सुबोध व रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं पाणिनी ने लौकिक संस्कृत के व्याकरण का निर्माण किया, उसके शब्दरूपों को स्थिरता प्रदान की। इससे संस्कृत को एक मानक व स्थायी रूप मिला पर यह मानक व स्थायी रूप ग्रंथकारों के अनुशासन में तो आ गया। ग्रंथरचना में मानक संस्कृत का प्रयोग होने लगा पर भारत का उत्तरी क्षेत्र बहुत विशाल और विविध है। यहाँ विभिन्न जातियाँ बसती रही हैं और बाहर से भी ढेरों जातियों का आगमन होता रहा। लिहाज़ा इस सबका परिणाम यह हुआ कि बोली जाने वाली भाषा संस्कृत से भिन्न रूप लेती गई और प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में भाषा का स्वतन्त्र रूप से विकास होता रहा। इसी से प्राकृत भाषा जन्मी अर्थात् ऐसी भाषा जो प्राकृतिक या नैसर्गिक रूप से प्रयुक्त होती है, न कि ग्रंथ के नियमों से। भाषा-विज्ञानी ग्रियर्सन ने इसी को 'प्राइमरी प्राकृत' भाषा की संज्ञा दी। यानी अब उत्तर भारत में दो तरह की भाषाएँ थीं। एक तो संस्कृत, दूसरी प्राकृत। प्राकृत को संस्कृत का ही जनभाषाकृत रूप कहा जा सकता है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी

अधिकाधिक स्थानीय रूप ग्रहण करता गया और अधिकाधिक प्राकृत होता गया।

प्राकृत भाषा को विभिन्न भाषा-विज्ञानियों ने तीन कालों में बाँटा है-

1. प्रथम प्राकृत : इसका काल 500 ईसापूर्व से प्रथम ईस्वी तक माना जाता है। इसे 'पालि भाषा' के नाम से भी अभिहित किया जाता है परन्तु 'पालि' शब्द को लेकर विवाद है। इसके विभिन्न अर्थ और विभिन्न व्युत्पत्तियाँ बताई गई हैं। मैक्सवेलेसर के अनुसार 'पालि' की व्युत्पत्ति 'पाटलि' शब्द से हुई अर्थात् पाटलिपुत्र की भाषा। यह विचार बाद में ग़लत सिद्ध हुआ। जगदीश कश्यम के अनुसार पालि का तात्पर्य है 'पर्याय'। 'पर्याय' शब्द का 'परियाय' के रूप में प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए प्रयोग मिलता है। इसी से पालि की उत्पत्ति हुई। पालि का व्यवहार क्षेत्र उत्तर भारत में किन-किन इलाक़ों में था, यह भी विवादास्पद विषय है पर यह सुनिश्चित है कि बुद्ध के उपदेश तथा बौद्ध-साहित्य पालि भाषा में मिलता है। इसके आधार पर यह माना जा सकता है कि यह बिहार व आज के उत्तर प्रदेश के अधिकांश क्षेत्र में बौद्धिक भाषा के रूप में प्रचलित थी।

2. द्वितीय प्राकृत : प्रथम ईसवी से 500 ईसवी तक इसका काल माना जाता है। इसे लोकप्रिय रूप से 'अपभ्रंश' भी कहा जाता है।

यह प्राकृत समय के साथ कई रूप ग्रहण करती रही। सभ्यता के विकास के साथ-साथ जिस प्रकार सभ्यता के भौगोलिक क्षेत्र का विकास होता है, उसी प्रकार उसका भाषा क्षेत्र भी फैलता जाता है। प्राकृत का भाषा क्षेत्र भी विकसित होता रहा, जिसके कारण इसके रूप में परिवर्तन होते रहे। प्राकृत के निम्न भेद किए जा सकते हैं -

1. शौरसेनी - यह मथुरा और शूरसेन क्षेत्र के आस-पास प्रचलित थी।
2. पैशाची - यह भारत के उत्तर-पश्चिम में प्रचलित रही
3. महाराष्ट्री - यह महाराष्ट्र क्षेत्र में विकसित हुई। आधुनिक मराठी इसी का परिनिष्ठित रूप है।
4. अर्धमागधी - यह प्राचीन कोसल गणराज्य के निकटवर्ती क्षेत्र में प्रचलित थी।
5. मागधी - मगध और आस-पास के इलाक़े में इसका विकास हुआ।
6. केकय - प्राचीन केकय प्रदेश इस भाषा का विकास क्षेत्र था।
7. टक्क - यह पंजाब का इलाक़ा था, जहाँ टक्क का विकास हुआ।
8. खस - यह हिमालयी क्षेत्रों में प्रचलित थी।
9. द्रावड़ - इसका क्षेत्र प्राचीन सिन्ध क्षेत्र था।

3. तृतीय प्राकृत : इसका काल 1500 ईसवी से 1000 ईसवी तक है। इसमें अपभ्रंश भाषा परिगणित की जाती है।

'अपभ्रंश' का शाब्दिक अर्थ है, 'बिगड़ा हुआ रूप'। यह नाम इसे संभवतः इसलिए मिला होगा कि यह मूल प्राकृत भाषा में समय के साथ ध्वनि व व्याकरण के परिवर्तन से बिगड़ कर एक नए रूप में ढल गई होगी। इसे प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की संयोजक कड़ी माना जाता है। अपभ्रंश के अनेक रूप प्रचलित रहे हैं और सभी आधुनिक भाषाओं का विकास अपभ्रंश के इन्हीं रूपों से हुआ है। यही कारण है कि

बाँग्ला, ओड़िया, गुजराती, हिन्दी, असमी, पंजाबी, मराठी आदि सभी भाषाओं की मूल शब्द सम्पदा समान है।

भाषा विज्ञानी भोलानाथ तिवारी के अनुसार आधुनिक भारतीय भाषाओं का अपभ्रंश से विकास निम्नानुसार हुआ है -

अपभ्रंश आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ शैरसेनी पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती केकय लहंदा टक्क पंजाबी ब्राचड सिन्धी महाराष्ट्री मराठी मागधी बिहारी, बंगालीह, उड़िया, असमिया अर्धमागधी पूर्वी हिन्दी भोलानाथ तिवारी के अनुसार, "इस प्रकार हिन्दी भाषा का उदभव अपभ्रंश के शैरसेनी, मागधी तथा अर्द्धमागधी रूपों से हुआ है।"

भाषाओं के विकास का अध्ययन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ऐतिहासिक दस्तावेज़ों तथा साहित्य के ज़रिए किया जाता है। इसमें भी मुख्य स्रोत साहित्य है। सन् 1000 के बाद भारत की विभिन्न आधुनिक भाषाओं के आदिरूपों में साहित्य मिलना आरम्भ हो जाता है। धीरे-धीरे दो-तीन सदियों बाद इस साहित्य की संख्या तथा इसमें भाषा का बढ़ा हुआ विकसित रूप भी परिलक्षित होता है। सिन्धी, पंजाबी, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, असमी, उड़िया आदि का आदि-साहित्य इसी काल के आसपास से मिलना प्राप्त होता है। मध्यकाल आते-आते इन सभी भाषाओं का प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है, जिससे पता चलता है कि मध्यकाल तक भारत की आधुनिक भाषाओं का प्रान्तीय भूगोल व साहित्यिक रूप स्थिर व विकसित हो चुका था। इन्हें 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषा' कहा गया। अमीर खुसरो हिन्दी के पहले कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में भाषा का जो रूप प्राप्त होता है, उसी का विकास बाद में हिन्दी भाषा के रूप में हुआ।

परन्तु हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर अस्पष्टता रही है। इसे सामान्य रूप से हिंदू शब्द से लिया गया। सिन्धु नदी के पार के उत्तर भारतीय क्षेत्र के लोग हिंदू और उनकी भाषा हिन्दी कहलाई। यह एक लोकप्रिय धारणा है। पर इस विषय में अभी भी काफ़ी शोध की आवश्यकता है।

भाषा के अर्थ में हिन्दी और उसके विकास के सम्बन्ध में अनेक भाषा-विज्ञानियों के मतों का समहार करते हुए भोलानाथ तिवारी ने यह सार-संकलन प्रस्तुत किया है, जो काफ़ी तथ्यात्मक है -

"भारतवर्ष में भी भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का प्रारम्भ मुसलमानों द्वारा ही किया गया। भारतीय परम्परा में 'प्रचलित भाषा' के लिए प्राचीन काल से ही 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता आया है। इसका प्रयोग क्रम से संस्कृत, प्राकृत तथा बाद में हिन्दी आदि के लिए हुआ। 'सो देख के बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह' (1438 में लिखित भास्वती की भाषा-टीका) 'संस्कृत कबिरा कूप-जल भाषा बहता नीर' - कबीर। 'आदि अंत जस कथ्था अहै, लिखि भाषा चौपाई कहे।' - जायसी, 'भाषा भनति मोर मति थोरी'- तुलसी 'भाषा-निबद्ध मति मंजुल' -तुलसी, 'भाषा-बोल न जानहीं जेहि के कुल के दास' - केशवदास। संस्कृत आदि के ग्रंथों की हिन्दी टीकाओं में 'भाषा-टीका' के रूप में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।"

मध्यकाल के इन कवियों का उदाहरण दो बातें बताता है, एक तो यह कि हिन्दी शब्द नहीं, बल्कि 'भाषा' या 'भाखा' का ही

प्रयोग आम था। इसके अनेक रूप थे - ब्रज, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी आदि। कवि स्वांतःसुखाय या राजदरबारों के आश्रय में काव्य या अन्य ग्रंथ रचना करते थे। अंग्रेज़ों के आने के बाद कई तरह की नई चीज़ें उभरीं, जिनमें से एक आधुनिक शिक्षा का आरम्भ था। इसके लिए जो आरम्भिक संस्थान बने उनमें से एक कलकत्ता का फ़ोर्ट विलियम कालेज था। भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी शब्द के अस्तित्व में आने से पूर्व का यह प्रसंग उद्धृत किया है, "19 फ़रवरी 1802 को फ़ोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा 'भाखा मुंशी' की माँग की स्वीकृति तथा लल्लूलाल को उक्त कालिज के काग़ज़ों मूं 'भाषा मुंशी कहे जाने से पता चलता है कि हिन्दी के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है। संस्कृत के टीका-ग्रंथों में तो यह अब भी चल रहा है। पुरानी पीढ़ी के पण्डित हिन्दी टीका न कह कर 'भाषा टीका' ही कहते हैं।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी का वर्तमान रूप जिन भाषाओं से विकसित हुआ है, वे तो मध्यकाल में विकसित हो रही थी। परन्तु उन्हें हिन्दी का वर्तमान रूप अंग्रेज़ों की भाषा व शिक्षा सम्बन्धी नीति के लागू होने के बाद मिला। मुस्लिम शासकों के काल में भाषा सम्बन्धी जितने भी उल्लेख मिलते हैं, उनमें हिन्दवी या हिन्दुस्तानी का उल्लेख उर्दू या रेख़्ता या उस भाषा के लिए मिलता है, जो खड़ी बोली का दरबारी रूप या देहलवी रूप थी। इस सम्बन्ध में भोलानाथ तिवारी का यह कथन काफ़ी महत्वपूर्ण है -

"यह ध्यातव्य है कि यद्यपि 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' का प्रयोग मध्यदेश की जनभाषा के लिए चल रहा था, और वह उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भी जा पहुँचा था, किन्तु इसका स्वीकृत भाषाओं में अकबर के काल तक नाम नहीं मिलता। अमीर ख़ुसरो ने अपने ग्रंथ 'नुहसिपर' में उस काल की प्रसिद्ध ग्यारह भाषाओं का उल्लेख किया है- सिन्धी, लाहौरी, कश्मीरी, बंगाली, गौड़ी, गुजराती, तिलंगी, मावरी या कोंकणी, ध्रुव, समुंदरी, अवधी, देहलवी, किन्तु इनमें हिन्दवी या हिन्दी नहीं है। अबुल फ़ज़ल की 'आइने अकबरी' में दी गई 12 भाषाओं-देहलवी, बंगाली, मुलतानी, मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगा, मरहठी, कर्नाटकी, सिन्धी, अफ़ग़ानी, बलूचिस्तानी, कश्मीरी - में भी इनका नाम नहीं आता। हाँ, एक बात अवश्य विचार्य है। ख़ुसरो और अबुल फ़ज़ल दोनों ही ने 'देहलवी' का उल्लेख किया है और मध्य प्रदेश की कोई और भाषा नहीं ली है। इसका आशय यह हुआ कि ख़ुसरो से लेकर अबुल फ़जल के काल तक इस भाषा का स्वीकृत नाम शयद देहलवी ही था। अन्य नाम हिन्दवी, हिन्दी कदाचित केवल साहित्य तक ही सीमित थे।"

यह ज्ञात इतिहास है कि 18 व 19वीं सदी के शायद मीर, मोमिन, सौदा, ग़ालिब आदि अपनी भाषा को हिन्दी, उर्दू, रेख्ता, हिन्दवी आदि समान रूप से कहते थे। अंग्रेज़ी शिक्षा की स्थापना के बाद हिन्दी को नागरी लिपि से और उर्दू को फ़ारसी लिपि से संबद्ध कर दिया गया। सरकारी तौर पर इसे ही मान्यता मिली। इसी के अनुरूप नई खुल रही शिक्षण संस्थाओं में भाषा के शिक्षण की व्यवस्था हुई। 19वीं सदी का नवजागरण जो कि मूलतः हिन्दुओं का ही नवजागरण था, हिन्दी को संस्कृत से सम्बद्ध कर उसका विकास आरम्भ किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना विख्यात ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' संस्कृतनिष्ठ हिन्दी व नागरी लिपि में लिखा। नागरी लिपि

में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन व साहित्य सृजन 19वीं सदी के उत्तरार्ध में तेज़ी से बढ़ा। इस प्रकार हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का विकास एक नया रूप ले सका। आज़ादी के आंदोलन ने इसे अपनी भाषा बनाया। राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ जुड़ कर हिन्दी भाषा व नागरी लिपि का तेज़ विकास 20वीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ। साहित्य के विस्तार ने हिन्दी को दूर-दराज़ तक फैलाया। आरम्भ में भारतेन्दु के युग तक गद्य की भाषा तो खड़ी बोली हिन्दी बन गई परन्तु काव्य अब भी ब्रज भाषा में ही लिखा जाता था परन्तु काव्य में नई प्रवृत्तियाँ आरम्भ हुईं और खड़ी बोली संस्कारित होकर काव्य की भाषा भी बन गई। आज़ादी के बाद जनमाध्यमों, शिक्षा-संस्थानों आदि के ज़रिए हिन्दी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ।

वर्तमान समय में हिन्दी प्रदेशों की भाषा है। अर्थात- उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान। इसके अलावा यह बम्बई, हैदराबाद, गोवा, कलकत्ता, बंगलौर, सूरत जैसे देश के विभिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों के सभी बड़े शहरों में व्यापक रूप से बोली- समझी जाती है। इस हिन्दी प्रदेश में लगभग 18 प्रमुख बोलियाँ हैं, जिनका अपना समृद्ध साहित्य और उसकी प्राचीन परम्परा भी है। हिन्दी का शब्द भंडार संस्कृत के तत्सम, तद्भव, ब्रज, अवधी, मैथिली, उर्दू, फ़ारसी, भोजपुरी, मगही, बुंदेली आदि की व्यापक शब्द-सम्पदा से समृद्ध है। नए संचार माध्यमों में हिन्दु के अनुप्रयोग ने हिन्दी को और विस्तार दिया है।

हिन्दी की व्याप्ति, व्यापकता आदि कम्प्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल पर देवनागरी लिपि के सुगम इस्तेमाल की तकनीक विकसित हो जाने के बाद से तेज़ी से बढ़ी है और बढ़ती जा रही है।

देशभर में हिन्दी के विविध रूप प्रचलित हैं। इन्हें पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी के रूप में बाँटा जा सकता है। ये रूप अपने क्षेत्र की बोलियों से समन्वित होकर प्रयोग किए जाते हैं पर लिखित व मुद्रित हिन्दी परिनिष्ठित हिन्दी कहलाती है। एक समय इस बात पर ज़ोर था कि हिन्दी में अधिकांश शब्द सम्पदा संस्कृत की ही हो। पर भाषा का विकास, समय, इतिहास और जनता के प्रवाह से तय होता है। हिन्दी का अब जो बोलचाल का, लेखन और साहित्य का, समाचार पत्र-पत्रिकाओं और दृश्य-श्रव्य माध्यमों का रूप निखर कर आया है, उसका शब्द-भंडार अत्यंत व्यापक है, वह संस्कृत के आग्रह पर नहीं टिका है। उसमें उर्दू की रवानी है तो स्थानीय बोलियों की छटा भी। यही हिन्दी की सुन्दरता, प्रभावशालिता और संभावना का सूचक भी है।

हिन्दी सूचना-संप्रेषण-बाज़ार की तथा राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा के रूप में पिछले 70 वर्षों में विकसित हुई है। हिन्दी भाषा के विकास से जुड़ी जो नकारात्मक व निराश करने वाली बात है, वह यह कि यह भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकी। यही नहीं यह अब प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के माध्यम के रूप में भी तेज़ी से ह्रास को प्राप्त हो रही है। इसका परिणाम विज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य, तकनीकी आदि क्षेत्रों में मौलिक चिन्तन और मौलिक कार्य के अभाव के रूप में सामने आएगा। ❑

-'योजना', हिन्दी के फ़रवरी 2021 अंक से साभार



राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार

भारत के संविधान के आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं के प्रसार हेतु वर्ष 2021 में विभिन्न भारतीय भाषाओं की फ़िल्मों की श्रेणियों में हिन्दी भाषा की सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का पुरस्कार स्वतन्त्रता नायक सरदार उधम सिंह पर आधारित फ़िल्म 'सरदार उधम' को मिला। इस श्रेणी में पुरस्कृत अन्य फ़िल्मों में गुजराती फ़िल्म 'छेलो शो', कन्नड़ फ़िल्म '777 चार्ली', मैथिली फ़िल्म 'समानांतर : द पैरेलेल', मलयालम फ़िल्म 'होम' और तेलुगू फ़िल्म 'उप्पेन' ('द वेट') प्रमुख रहीं।

भारतीय सिनेमा में उत्कृष्ट सिनेमाई उपलब्धियों को सम्मानित करने के लिए, भारत सरकार द्वारा वर्ष 1954 में राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों की एक शृंखला प्रारम्भ की गई थी। भारत सरकार के राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम द्वारा दिए जाने वाले ये पुरस्कार तीन श्रेणियों में प्रदान किए जाते हैं- फ़ीचर फ़िल्म, ग़ैर-फ़ीचर फ़िल्म और सिनेमा पर श्रेष्ठ लेखन।

69वें राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार के चयन के लिए गठित जूरी, भारतीय सिने-जगत के प्रख्यात फ़िल्म निर्माता और फ़िल्मी हस्तियाँ शामिल थीं, जिनके द्वारा तीनों श्रेणियों में वर्ष 2021 के पुरस्कार विजेताओं की घोषणा की गई।

फ़ीचर फ़िल्मों की श्रेणी के पुरस्कार

प्रख्यात फ़िल्म निर्देशक केतन मेहता की अध्यक्षता वाली फ़िचर फ़िल्मों की जूरी ने इस श्रेणी में आर. माधवन द्वारा निर्देशित हिन्दी फ़िल्म 'राकेट्री : द नम्बी इफ़ेक्ट' को वर्ष 2021 की सर्वश्रेष्ठ फ़ीचर फ़िल्म का पुरस्कार दिया गया। एस. राजमौली द्वारा निर्देशित तेलुगू फ़िल्म 'आरआरआर' को सम्पूर्ण मनोरंजन प्रदान करने वाली सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय फ़ीचर फ़िल्म की श्रेणी का पुरस्कार, स्वर्ण कमल और 2,00,000 के नगद राशि से पुरस्कृत किया गया।

राष्ट्रीय एकता पर सर्वश्रेष्ठ फ़ीचर फ़िल्म के लिए नरगिस दत्त पुरस्कार विवेक अग्निहोत्री द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'द कश्मीर फ़ाइल्स' को मिला।





रीमा बोरा द्वारा निर्देशित असमिया फ़िल्म 'अनुनाद- द रेज़ोनेंस' को देश के कुछ हिस्सों में ग़ुलाम दुल्हनों के मुद्दे को पर्दे पर दिखने के लिए सामाजिक मुद्दों पर सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म की श्रेणी का पुरस्कार तो मलयालम फ़िल्म 'आवासावयुहम' को पर्यावरण संरक्षण पर सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का पुरस्कार दिया गया। मनीष सेनी के निर्देशन में बनी गुजराती फ़िल्म 'गाँधी एंड कम्पनी' सर्वश्रेष्ठ बाल फ़िल्म का पुरस्कार ले गई।

व्यक्तिगत पुरस्कारों में मराठी फ़िल्म 'गोदावरी' ('द होली वाटर') के निर्देशक निखिल महाजन को सर्वश्रेष्ठ निर्देशक, लोकप्रिय तेलुगू फ़िल्म 'पुष्पा : द राइज़ (पार्ट-1)' के मुख्य अभिनेता अल्लू अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार मिला। हिन्दी फ़िल्म 'गंगूबाई काठियावाड़ी' में गंगूबाई के किरदार को बड़े पर्दे पर जीवन्त करने के लिए आलिया भट्ट तथा देश में सरोगैसी सम्बन्धित समस्या को दर्शाती फ़िल्म 'मिमी' में प्रमुख किरदार के लिए कृति सेनॉन को संयुक्त रूप से सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियों के पुरस्कार से नवाज़ा गया।

सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेता फ़िल्म 'मिमी' के लिए पंकज त्रिपाठी, सर्वश्रेष्ठ सहायक अभिनेत्री 'द कश्मीर फ़ाइल्स' के लिए पल्लवी जोशी, सर्वश्रेष्ठ बाल कलाकार गुजराती फ़िल्म 'छेलो शो' के लिए भावीन रबारी को दिया गया।

इन मनोरंजक और ज्ञानवर्धक फ़िल्मों के निर्माण में सहायक स्तम्भों को सम्मानित करने के लिए दिए गए पुरस्कारों में 'सर्वश्रेष्ठ पार्श्व गायक' का पुरस्कार तेलुगू फ़िल्म 'आरआरआर' के गीत को अपनी आवाज़ देने के लिए काल भैरव को मिला। इसी प्रकार से बेस्ट सिनेमेटोग्राफ़ी और बेस्ट पोशाक डिज़ाइन के लिए सरदार उधम, सर्वश्रेष्ठ सम्पादन के लिए 'गंगूबाई काठियावाड़ी' और इसी फ़िल्म के मेकअप आर्टिस्ट प्रीतिशील सिंह डिसूज़ा को सर्वश्रेष्ठ मेकअप कलाकार का पुरस्कार मिला।

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं के प्रसार हेतु वर्ष 2021 में विभिन्न भारतीय भाषाओं की फ़िल्मों के श्रेणियों में हिन्दी भाषा की सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का पुरस्कार स्वतन्त्रता नायक सरदार उधम सिंह पर आधारित फ़िल्म 'सरदार उधम' को मिला। इस श्रेणी में पुरस्कृत अन्य फ़िल्मों में



गुजराती फ़िल्म 'छेलो शो', कन्नड़ फ़िल्म '777 चार्ली', मैथिली फ़िल्म 'समानांतर : द पैरेलेल', मलयालम फ़िल्म 'होम' और तेलुगू फ़िल्म 'उप्पेन' (द वेट) प्रमुख रहीं।

ग़ैर-फ़ीचर फ़िल्मों की श्रेणी के पुरस्कार

निर्माता-निर्देशक सृष्टि लखेरा की फ़िल्म 'एक था गाँव' को सर्वश्रेष्ठ ग़ैर-फ़ीचर फ़िल्म का पुरस्कार, स्वर्ण कमल और 1,50,000 की नगद राशि दी गई। इस श्रेणी में दिए जाने वाले चौबीस पुरस्कारों में मुख्यतः 'फ़ायर ऑन एज' को सर्वोत्तम मानवशास्त्रीय, 'टी.एन. कृष्णन : बो स्ट्रिंग टू डिवाइन' को सर्वश्रेष्ठ कला फ़िल्म, अविजीत बनर्जी की 'इथोस ऑफ़ डार्कनेस' को सर्वश्रेष्ठ विज्ञान प्रौद्योगिकी फ़िल्म, 'मिठू दी' और 'थ्री टू वन' को संयुक्त रूप से सामाजिक मुद्दों पर सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म तथा 'सिरपिगलिन सिरपांगल' को दिए गए सर्वश्रेष्ठ शैक्षिक फ़िल्म के पुरस्कार प्रमुख रहे। ग़ैर-फ़ीचर फ़िल्मों की श्रेणी में फ़िल्म 'बाले बंगारा', 'करुवराई', 'द हीलिंग टच' और फ़िल्म 'एक दुआ' का विशेष उल्लेख किया गया।

सिनेमा पर सर्वश्रेष्ठ लेखन श्रेणी के पुरस्कार

भारतीय फ़िल्म जगत के संगीतकारों की धुरंधर जोड़ी लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल पर राजीव विजयकर द्वारा अंग्रेज़ी में लिखित पुस्तक 'लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल का संगीत : अविश्वसनीय रूप से मधुर यात्रा' को भारतीय सिनेमा पर सर्वश्रेष्ठ पुस्तक का वर्ष 2021 का पुरस्कार मिला।

सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म समीक्षक का पुरस्कार तेलुगू भाषा के फ़िल्म आलोचक पुरुषोत्तमचार्युलू को प्राप्त हुआ और कन्नड़ भाषा के फ़िल्म आलोचक सुब्रह्मण्यम बदूर का विशेष उल्लेख किया गया।

1950 और 1960 के दशक में अपनी अद्‌भुत अदाकारी से फ़िल्मी दर्शकों के दिलों में छाप छोड़ने वाली और क़रीब नब्बे फ़िल्मों में अपने वैविध्यपूर्ण अभिनय से भारतीय सिनेमा के इतिहास को समृद्ध बनाने वाली अभिनेत्री वहीदा रहमान को दादासाहेब फाल्के फ़िल्म पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

69वें राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार में पुरस्कृत फ़िल्में और फ़िल्मों से जुड़े कलाकार भारतीय फ़िल्म जगत की वैविध्यपूर्ण परम्परा को आगे ले जाने के साथ ही वर्तमान के नए बदलावों को भी प्रदर्शित कर रहे हैं।

इस देश में जहाँ हर रोज़ सैकड़ों बेहतरीन फ़िल्में विभिन्न मुद्दों पर और अलग-अलग भाषाओं में बनाई जा रही हैं, वहाँ हर श्रेणी की फ़िल्मों के बीच बहुत ही कड़ी प्रतिस्पर्धा होती है। इस प्रतिस्पर्धा के बीच परिश्रम के साथ सभी प्रविष्टियों की जाँच करना और पुरस्कारों के लिए सर्वश्रेष्ठ नामों का चयन करना राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कारों को महत्वपूर्ण बनाता है। ❑

संकलन : रवि रौशन चंचल

(स्रोत : पीआईबी)



मूर्तिकार पाण्डेय सुरेन्द्र

रूपाकारों की एक अनन्य शृंखला

मूर्तिकार पाण्डेय सुरेन्द्र (पूरा नाम पाण्डेय सुरेन्द्र नाथ सिन्हा) की पारिवारिक पृष्ठभूमि साहित्य और संस्कृति की रही है लेकिन इनका रुझान कला के लिए परवान चढ़ गया जब इन्होंने 'कलकत्ता स्कूल ऑफ़ आर्ट' के बारे में जाना। वहाँ कार्यरत उप प्राचार्य पटना के ईश्वरी प्रसाद वर्मा के बारे में जाना।

आज की आधुनिक भारतीय मूर्तिकला में रूपाकारों की एक अनन्य शृंखला हम पाण्डेय सुरेन्द्र के सृजन में देख रहे हैं। विविधताओं से भरी भारतीय मूर्तिकला में इनकी एक अभिन्न और समर्थ पहचान है। इसे देखकर यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि इनके अध्ययन का एक सतत सिलसिला रहा है जिसके बाद इनके अनुभवों की परिपक्वता इनके क्रमिक सृजन में उद्भूत हुई है। इनकी काँस्य कृतियों में मनुष्य का और मानवीय परिस्थितियों के आकार विन्यास का एक सृजनात्मक उत्स है, जो हमें गहन अध्ययन के लिए प्रेरित करता है। यद्यपि एक दृष्टि में किसी साधारण मनुष्य की संवेदना भी हम उनमें देख सकते हैं। दो, तीन या चार के समूह में मनुष्य कीलों से गुथे हैं या किसी स्तम्भ से जकड़े हैं जैसे कोई संत्रास जी रहे हों लेकिन वे ख़ामोश हैं, कोई अनर्गल चीख़ नहीं है उनमें। जैसे कलाकार के सृजन में अनुभूतियों का समग्र तारतम्य हो। वे त्रिभंगी मुद्रा में स्तम्भित हैं और ठहरे हुए से हैं। वे हमें किसी मनुष्य के लिए अपेक्षित चिन्तन से जोड़ते हैं। बहुत पहले इन कृतियों से पूर्व 1973 में इनकी एक काँस्य कृति में एक मनुष्य अपनी मज़बूत मुट्ठी के ऊपर चेहरा टिकाए



अवधेश अमन
ई-मेल : awadheshaman@gmail.com



हुए अपना भविष्य देख रहा है। उन दिनों इनकी यह कृति बौद्धिक क्षेत्र में सुर्ख़ियों में रही थी। इसके बाद की काँस्य कृतियों का भी एक अनुभवजन्य सिलसिला है।

मूर्तिकार पाण्डेय सुरेन्द्र (पूरा नाम पाण्डेय सुरेन्द्र नाथ सिन्हा, छपरा, बिहार) की पारिवारिक पृष्ठभूमि साहित्य और संस्कृति की रही है मगर इनका रुझान कला के लिए परवान चढ़ गया जब इन्होंने 'कलकत्ता स्कूल ऑफ़ आर्ट' के बारे में जाना। वहाँ कार्यरत उप प्राचार्य पटना के ईश्वरी प्रसाद वर्मा के बारे में जाना। फिर क्रमशः बंगाल शैली की कला का उद्‌भव, कलकत्ता के जोड़ासाखो में चित्रकला के अध्ययन-अध्यापन का सिलसिला चित्रकार कलागुरु अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस और फिर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शान्तिनिकेतन तथा वहाँ के 'कला भवन' के बारे में जानने के बाद इनकी प्रबल इच्छा हो गई कला भवन में ललित कला के अध्ययन के लिए। शान्तिनिकेतन में प्रवेश पाकर चित्रकला, मूर्तिकला तथा छापा कला का भी अध्ययन इन्होंने किया किन्तु वहाँ रामकिंकर बैज सरीखे मूर्तिकार की मूर्तिकला से ये प्रभावित हो गए। देश के अन्य कुछ ख्यात मूर्तिकारों के सृजन का भी इन्होंने अध्ययन किया। अतः 1956 में शान्तिनिकेतन से ललित कला विषय में स्नातक होने के बाद इनका अध्ययन विशेष रूप से मूर्तिकला के लिए मुखर हुआ। उच्च अध्ययन के लिए इन्हें अमरीका की छात्रवृत्ति प्राप्त हुई तथा अध्ययन के लिए क्लेवलैंड इंस्टीट्यूट आफ़ आर्ट्स, ओहिओ निर्धारित किया गया। उन दिनों एक विकसित देश में अत्याधुनिक सुविधाओं के साथ इनका अध्ययन शुरू हुआ और क्रमशः ब्रांज़कास्टिंग माध्यम की विशेषज्ञता हासिल की। इटली के प्राचीन काँस्य शिल्प के निर्माण की प्रणाली का भी विशेष अध्ययन किया। वहाँ मूर्तिशिल्प के उच्च अध्ययन की इनकी शिक्षा 1964 में पूरी हुई। ख्यात अमरीकन मूर्तिकार जान क्लाग इनकी कृतियों के प्रशंसकों में रहे।





भारत लौटकर सुरेन्द्रजी ने अपनी कृतियों की प्रदर्शनियाँ क्रमशः लखनऊ, दिल्ली तथा पटना में लगाई। तत्पश्चात 1967 में इनकी नियुक्ति पटना विश्वविद्यालय के कला एवं शिल्प महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में हुई। एक मज़बूत स्थापना वाले कला महाविद्यालय के प्राचार्य का गुरुतर दायित्व पूरा करते हुए ये सृजनशील रहे। वहाँ जयनारायण सिंह यादव और राजेन्द्र गुप्ता सरीखे मूर्तिकारों को आदमक़द या उससे भी बड़े आकार के काँस्य धातु में मूर्तिशिल्प के निर्माण की अद्यतन प्रभावी तकनीक सिखाई। स्वयं भी काम किया मगर अपनी प्रशासनिक व्यस्तता के कारण उन दिनों वे कुछ वर्षों तक रेशा काँच में मूर्तिशिल्पों के सृजन में लग गए, जो कम समय में बिना किसी जटिल प्रक्रिया के सम्भव था। इस नए माध्यम से इन्होंने अनेक प्रभावशाली कृतियों की रचना की जिसमें रूपाकारों के अंतरंग विज्ञान का भी निष्पादन है परन्तु कालांतर में इसका एक दुखद पहलू यह हुआ कि रेशा काँच के रसायनों से इनके हाथों में ज़ख़्म उभर आए और तब इस माध्यम के प्रति इनके मन में एक विरक्ति भाव उभर आया। अमरीका से लौटने के बाद मूर्तिकला के लिए ब्रांज़कास्टिंग तकनीक पर 'ब्रांज़कास्टिंग' नाम से एक उपयोगी किताब





लिखी 1966 में जो देश के ख्यात मूर्तिकार शंखों चौधरी सरीखे देशभर में काँस्य शिल्प की रचना करने वाले मूर्तिकारों के लिए बहुत उपयोगी साबित हुई। अंग्रेज़ी में लिखी गई इस किताब के अब तक भारत में तीन संस्करण छप चुके हैं। स्वयं सुरेन्द्रजी काँस्य धातु में मूर्तिशिल्प की रचना करते रहे। पटना के कला एवं शिल्प महाविद्यालय में आधुनिक कला सृजन के लिए इनकी प्रेरणा से आज कला जगत में अरुण पण्डित, रामू कुमार, अमरेश, बिजय चन्द प्रसाद, अशोक तिवारी, संजय कुमार तथा सुबोध गुप्ता सरीखे कई कलाकार हैं। मूर्तिकला के लिए अपने छोटे भाई पाण्डेय चन्द्रविनोद को भी इन्होंने प्रेरित किया जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के चाक्षुष कला संकाय में प्रोफ़ेसर और डीन रहे। अपने छोटे सुपुत्र राजीवनयन को भी प्रेरित किया जिनका प्रस्तर शिल्प आज एक समर्थ राष्ट्रीय पहचान में है। राजीवनयन लखनऊ के कला एवं शिल्प महाविद्यालय के प्राचार्य रहे और लखनऊ के ही शकुन्तला मिश्र विश्वविद्यालय में ललित कला विभाग के प्रमुख हैं। 1993 में पटना विश्वविद्यालय के ललित कला महाविद्यालय के प्राचार्य पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद से सुरेन्द्र लखनऊ में रह रहे हैं। इनकी कार्यशाला या इनका स्टूडियो लखनऊ के अलीगंज में राजीवनयन के साथ-साथ है, जहाँ पिता के अनुभवों का लाभ पुत्र को मिलता है तथा अपने बुज़ुर्ग पिता को पुत्र का सहयोग मिलता है। इसी कार्यशाला में पाण्डेय सुरेन्द्र ने काँस्य में बड़े-बड़े आदमक़द मूर्तिशिल्प और आवक्ष शबीहों का भी निर्माण किया है।

सुरेन्द्रजी कसौटी पत्थर, रेतीला पत्थर और इनके साथ मिश्रित धातु शिल्प की भी प्रभावशाली रचना करते रहे हैं। कला

का एक बहुत अनुपम संसार इन्होंने सफ़ेद संगमरमर और गुलाबी संगमरमर में भी रचा है। इन कृतियों के रूपाकारों का एक स्थिर बहाव है। आकार ज़्यादातर ज्यामितीय तथा अर्ध अमूर्तन में धातु के आकार के साथ एक ख़ूबसूरत समन्वय में सामने आए हैं मगर इनसे भिन्न हैं, इनके सृजनात्मक गति वाले काँस्य शिल्प। इन्हें देखकर मिट्टी में इनके गढ़ने, मोल्ड लेने और फिर कास्ट करने में एक अभ्यासपन है। कहीं खुरदरापन ढलकर निकलने के बाद रूपाकारों के एक हृदयग्राही संसार की रचना करते हैं। एक अपरिमित यथार्थपरकता भी है मगर इनके गुलाबी संगमरमर के शिल्प जिस मनोयोग से तराशे गए हैं, उनमे तक्षण की परम्परागत प्रक्रिया नहीं पूरी करके आधुनिक संसाधनों से आकार गढ़े गए हैं जिससे गुलाबी रंग की आभा हमें अपनी ओर खींचती है। एक अनोखा दृश्य विज्ञान है इन सबमें। यह किसी कलाकार के सृजन की महान पराकाष्ठा पर ही सम्भव होता है। 2014 में इनकी कृतियों की एक समग्र प्रदर्शनी पटना में ललित कला अकादमी की दीर्घा में आयोजित हुई थी जो बहुत दिनों तक कला प्रेमियों की स्मृति में रही।

मूर्तिकार सुरेन्द्र भोजपुरी और हिन्दी के श्रेष्ठ कवि भी हैं जिनका भोजपुरी काव्य-संग्रह 'ई हरनाकुश मन' और हिन्दी काव्य-संग्रह 'फिर पलाश बन लहके' अपने-अपने समय में साहित्य प्रेमियों के बीच चर्चा में रहा है। हिन्दी में कला पर भी इन्होंने कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर लिखा है। 88 वर्षीय पाण्डेय सुरेन्द्र मूर्तिशिल्प के भारी-भरकम काम से अलग इन दिनों जल रंगों से काग़ज़ पर चित्रांकन में लगे हैं। इनके मूर्तिशिल्प समय-समय पर देश और दुनिया की दीर्घाओं में प्रदर्शित होते रहे हैं। अब कई अच्छे संग्राहकों के पास हैं इनकी कृतियाँ आधुनिक भारतीय कला की एक अमूल्य निधि के रूप में। ❑

लेखकों से

- कृपया मौलिक अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें।
- रचनाओं की स्वीकृति की सूचना तीन महीने के अंदर न मिले तो उसे अस्वीकृत मान लें।
- रचना के साथ अपना पूरा पता, मोबाइल नम्बर, ईमेल, चित्र और संक्षिप्त परिचय अवश्य भेजें।
- डाक द्वारा भेजी गई रचनाएँ अस्वीकृत होने पर लौटाना संभव नहीं हो पाएगा। कृपया अपनी रचनाओं की प्रतिलिपि अपने साथ रखे- ताकि आप उसका/उनका अन्यत्र उपयोग कर सकें।

ईमेल : ajkalhindi@gmail.com



दादासाहेब फाल्के पुरस्कार

अनेक यादगार फ़िल्मों में सबल अभिनय, अभिनय कला के प्रति अपने समर्पण, अपने सिनेमा को सामाजिक सरोकारों से जोड़े रखने के गरिमामय प्रयत्नों का अभिनंदन है भारत सरकार द्वारा उन्हें हाल ही में दिया गया फ़िल्म जगत का सर्वोच्च सम्मान 'दादासाहेब फाल्के पुरस्कार'।

विनम्रता वहीदा के व्यक्तित्व का 'इनबिल्ट' हिस्सा

लिविंग इन रिलेशनशिप भरपूर प्रचलन में आ जाने के बावजूद आज भी 'टेबू' ही है। इसमें रहने वाले दोनों पक्ष अनिश्चितता के भँवर में डूबते-उतरते रहते हैं। यहीं पर नारी स्वतन्त्रता की वह आधुनिक विचारधारा डगमगाती लगती है जो इसे बहुप्रचारित करती आई है। आज से आधी सदी से भी पहले, किंचित 'ग्रे शेड' वाली फ़िल्म 'गाइड' में उस भूमिका को स्वीकार करने से पहले उसकी मनोनीत नायिका वहीदा रहमान को किस पशोपेश से गुज़रना पड़ा होगा जिसमें उन्हें अपने पति को छोड़ कर एक ऐसे नौजवान के साथ स्वेच्छा से रहना मंज़ूर था जिसने पति से तिरस्कृत महिला को जीवन की नई राह दिखाई। आज यह बात सहज लग सकती है लेकिन जिस ज़माने में फ़िल्मों के नायक-नायिका अपनी छवि को महत्व देते हुए किसी तिरस्कृत पात्र की भूमिका करने से कतराते थे, वहीदा रहमान ने न केवल वह भूमिका स्वीकार की अपितु उसकी नायिका रोज़ी को नारी स्वतन्त्रता की ऐसी सबल प्रतीक बना दिया जिसे दर्शक आज भी सगर्व याद करते हैं और बार-बार देखना चाहते हैं। 'गाइड' की रोज़ी पहले कोई नृत्यांगना नहीं थी लेकिन उसमें नृत्य की प्रतिभा ज़रूर थी जो अवसर पाकर प्रस्फुटित और पल्लवित हो उठी। उसने सबल संदेश दिया कि हर नारी में कोई-न-कोई



विनोद तिवारी
ई-मेल : vinodtiwari41@hotmail.com

प्रतिभा ज़रूर होती है और उसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। ऐसी ही अनेक यादगार फ़िल्मों में सबल अभिनय, अभिनय कला के प्रति अपने समर्पण, अपने सिनेमा को सामाजिक सरोकारों से जोड़े रखने के गरिमामय प्रयत्नों का अभिनंदन है भारत सरकार द्वारा उन्हें हाल ही में दिया गया फ़िल्म जगत का सर्वोच्च सम्मान 'दादासाहेब फाल्के पुरस्कार'।

किसी भी तरह के विवाद से कन्नी कैसे काटी जाती है, यह वहीदा रहमान को बहुत अच्छी तरह पता है। बहुधा यह कहा जाता है कि फ़िल्म 'जंगली' में शम्मी कपूर ने उस काल के युवकों की समाज के डर से प्यार से लुकाछिपी के प्रति विद्रोह को अभिव्यक्ति देते हुए 'हमें चाहे कोई जंगली कहे, कहता है तो कहता रहे, हम प्यार के तूफ़ानों में घिरे हैं, हम क्या करें' की जो पुकार लगाई थी उसने नौजवानों को उनका दीवाना बना दिया था। 'गाइड' में वहीदा ने नारी की आज़ादी को जो स्वर दिया था 'आज फिर जीने की तमन्ना है, आज फिर मरने का इरादा है', उसकी गूँज 'जंगली' से कहीं ज़्यादा अर्थपूर्ण मानी जानी चाहिए। यही बात जब एक बार वहीदा रहमान से पूछी तो उनका विनम्र उत्तर था, "शम्मीजी बहुत बड़े आर्टिस्ट हैं, बहुत प्यारे इंसान हैं। 'गाइड' विजयजी ने डायरेक्ट की थी। सारा क्रेडिट उन्हीं को जाता है।"

यह विनम्रता वहीदा के आकर्षक व्यक्तित्व का 'इनबिल्ट' हिस्सा है। वे अल्पभाषी हैं। इसका लाभ उन्हें उन बातों में उलझने से बचाए रखता है जिन्हें लेकर गॉसिप गढ़ी जा सकती है। वहीदाजी उनसे बच निकलना जानती हैं। दिलीप कुमार के लम्बे बैचलरहुड के ज़माने में उनका नाम



दिलीप कुमार के साथ ख़ूब जोड़ा गया। यह स्वाभाविक भी था। वे फ़िल्म जगत की अतीव सुन्दर अभिनेत्रियों में गिनी जाती रही हैं। इस जोड़ी को दर्शकों ने भरपूर सराहा और बार-बार साथ देखने की इच्छा ज़ाहिर की। अफ़वाहों का बाज़ार तब इतना गरम रहता कि बस शादी होने भर की देर बताई जाती थी। हालाँकि इन्होंने चार-पाँच ही फ़िल्मों में साथ काम किया जिनमें 'दिल दिया दर्द लिया' 1966, 'राम और श्याम' 1967, 'आदमी' 1968 और 'मशाल' 1984 प्रमुख थीं लेकिन इस जोड़ी के चर्चे हमेशा ख़ूब होते थे।

हिन्दी फ़िल्म जगत में वहीदा को पहला बड़ा मौक़ा गुरु दत्त ने 'सी आई डी' फ़िल्म में मुख्य भूमिका के तौर पर दिया था। यूँ तो वहीदा ने उन्हें हमेशा अपना 'मेंटोर' ही कहा। उन दोनों के सम्बन्धों की विविध लोगों ने विविध तरह से व्याख्या की है लेकिन वहीदा ने कभी ऐसी कोई टिप्पणी नहीं की जिससे रिश्तों की गरिमा पर आँच आती हो। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि वहीदा की प्रतिभा को जितना गुरु दत्त ने पहचाना और अपनी फ़िल्मों में उसका जैसा सदुपयोग किया, उसका कोई सानी नहीं। इनमें से 'प्यासा' तो फ़िल्म कला की अद्‌भुत मिसाल मानी जाती है। '12 ओ क्लॉक', 'काग़ज़ के फूल', 'साहब बीवी और ग़ुलाम' सभी में वहीदा सर्वथा अलग और बेजोड़ हैं। 'साहब बीवी और ग़ुलाम' में नायक (गुरु दत्त) के प्रति आकर्षण से बद्ध, उसे छेड़ने का कोई मौक़ा न गँवाने वाली नायिका के तौर पर 'भँवरा बड़ा नादान... बगियन का मेहमान... फिर भी... जाने ना... जाने ना... कलियन की मुस्कान...' में वहीदा रहमान ने जिस चंचलता को साकार किया, वह 'चौदहवीं का चाँद' की उस नायिका से कितनी अलग है जिसे इस बात का क़तई अनुमान नहीं कि उसके मासूम, अतुलनीय सौन्दर्य ने क्या गुल खिला रखे हैं। 1962 की इस फ़िल्म के बाद इस सुनहरे साथ का संयोग फिर नहीं बना लेकिन वहीदा का नाम गुरु दत्त के बिना और गुरु दत्त का नाम आज भी वहीदा के बिना अधूरा माना जाता है।

यह वर्ष देव आनंद का शताब्दी वर्ष है। देव के साथ वहीदा ने जिन फ़िल्मों में नायिका की भूमिका निभाई उनमें प्रमुख हैं 'सी आई डी', 'सोलहवाँ साल', 'काला बाज़ार', 'बात एक रात की', 'गाइड', 'रूप की रानी चोरों का राजा', 'प्रेम पुजारी'। अंतिम दो फ़िल्मों को अन्य फ़िल्मों जैसी सफलता नहीं मिली। शताब्दी वर्ष में देव को याद करते हुए वहीदा ने जब यह कहा कि वे एकमात्र ऐसे हीरो थे जिन्हें मैं उनके पहले नाम देव से सम्बोधित किया करती थी तो पत्रकारों ने सवालों की झड़ी लगा दी। सबको लगा कि अफ़वाहों से बच निकलने वाली वहीदा इस बार अपने ही बयान की वजह से फँस गई हैं और अब किसी रोमांटिक क़िस्से का पर्दाफ़ाश होने जा रहा है लेकिन हमेशा की तरह वहीदा इस बार भी साफ़ बच निकलीं। उन्होंने सारे सवाल समेट कर एक ओर रखते हुए बताया कि ऐसा देव आनंद के आग्रह के कारण ही था। वे नहीं चाहते थे कि रोमांटिक भूमिका निभाने वाले कलाकारों के बीच बातचीत भारी-भरकम आदरवाचक सम्बोधन से हो जो परस्पर दूरी बढ़ाने जैसे लगते हैं।

वहीदा रहमान ने लगभग 90 फ़िल्मों में काम किया। ज़ाहिर है सफलता के साथ असफलता भी झेली लेकिन उसका दोष दूसरों पर नहीं मढ़ा। राज कपूर के साथ की गई उनकी फ़िल्म 'तीसरी क़सम' की चर्चा तो बहुत रही लेकिन व्यावसायिक सफलता की नज़र से यह फ़्लॉप फ़िल्मों की श्रेणी में गिनी जाती है। इस फ़िल्म में श्रेष्ठ अभिनय के लिए बंगाल फ़िल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन ने वहीदा को पुरस्कृत किया था। उस अवसर पर हुई प्रेस वार्ता के दौरान वहीदा से एक अटपटा सवाल पूछा गया, "बहुत-से लोग यह मानते हैं कि इस फ़िल्म में राज कपूर को लेना ग़लत साबित हुआ है क्योंकि वे उतने मासूम और अबोध नहीं लग सकते थे जितना इस चरित्र के लिए आवश्यक था। वे तो प्रौढ़ तथा दुनिया देखे, अनुभवी मालूम हुए।" वहीदा ने उत्तर को डिप्लोमेटिक रखा, "राज साहब बहुत बड़े और कमाल के कलाकार हैं। वे उतने ही अच्छे इंसान भी हैं। उनमें कोई कमी ढूँढी नहीं जा सकती।"

वहीदा रहमान ने सन् 1962 के आस-पास जॉनीवॉकर के भाई टॉनीवॉकर की फ़िल्म 'शगुन' की थी। सुरम्य नैनीताल में इसका अधिकांश भाग फ़िल्माया गया जिसमें हीरो 'वेरी हैंडसम' लेकिन फ़िल्म जगत में नया-नया था। यह फ़िल्म तो सफल नहीं हुई लेकिन वहीदा के जीवन पर इसका अमिट प्रभाव बना रहा। इसी नए, हैंडसम हीरो कंवलजीत के साथ, जिनका वास्तविक नाम शशि रेखी था, वहीदा ने 1974 में विवाह किया। दूसरे फ़िल्मकारों की तरह वहीदा ने अपने बेटे सुहेल या बेटी में से किसी को भी जबरन एक्टर बनाने की कोशिश नहीं की। वे दोनों अपने अलग कामों में व्यस्त हैं।

पुरस्कारों और प्रशस्तियों से वहीदा रहमान का नाता पुराना है। हाल में मिले दादासाहेब फाल्के सम्मान से बहुत पहले उन्हें अपने समय का सबसे प्रतिष्ठित माना जाने वाला तथा एकमात्र, फ़िल्मफ़ेयर अवॉर्ड मिला, जो 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया' की फ़िल्म पत्रिका 'फ़िल्मफ़ेयर' की ओर से आज भी दिया जाता है। उन्हें यह पहले फ़िल्म 'गाइड' में सर्वोत्तम अभिनय के लिए सन् 1967 में, उसके बाद 1968 में सर्वश्रेष्ठ अभिनय के लिए दिया गया था, फ़िल्म थी 'नीलकमल'। 1969 में फ़िल्म 'ख़ामोशी' के लिए, 1976 में 'कभी कभी' के लिए, 1982 में 'नमकीन' के लिए, 1989 में 'चाँदनी' के लिए और 1991 में 'लम्हे' के लिए उन्हें पुरस्कार के योग्य माना गया अर्थात नामांकित किया गया था। सन् 1994 में इसी पत्रिका ने उन्हें 'लाइफ़टाइम अचीवमेंट अवॉर्ड' से नवाज़ा। सन् 1971 में वहीदा को सुनील दत्त की फ़िल्म 'रेशमा और शेरा' में सर्वश्रेष्ठ अभिनय के लिए भारत सरकार का 'नेशनल फ़िल्म अवॉर्ड' देकर सम्मानित किया गया।

फ़िल्म जगत में लगभग 50 वर्ष व्यतीत कर चुकीं वहीदा रहमान अब 84 वर्ष की हैं और आज भी फ़िल्म एवं सामाजिक क्षेत्रों में सक्रिय रह कर सभी के लिए प्रेरणा बनी हुई हैं। सन् 2017 में आई उनकी फ़िल्म 'द सॉन्ग ऑफ़ स्कार्पियो' इन दिनों ओटीटी प्लेटफ़ार्म पर उपलब्ध है। 2021 में हिन्दी तथा इंग्लिश में बनी 'द स्केट गर्ल' इस बात का प्रमाण है कि फ़िल्मों में वहीदा की माँग आज भी बनी हुई है। ❑

सत्यमेव जयते

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आज़ादी का अमृत महोत्सव

ई-रिसोर्स एग्रीगेटर (ईआरए)

के इम्पैनलमेंट के लिए आवेदन आमंत्रित

सरकार के प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान से जुड़ने और उसके ई-प्रकाशनों के विक्रय का सुनहरा अवसर



विशेषताएं :-

- प्रकाशन विभाग की लोकप्रिय ई-पुस्तकें और ई-पत्रिकाएं उपलब्ध कराने का अवसर।
- प्राप्त राजस्व में 30% की निश्चित हिस्सेदारी।
- किसी निवेश की आवश्यकता नहीं।
- मात्र 2000 रुपये का पंजीकरण शुल्क।

अधिक जानकारी के लिए देखें –
www.publicationsdivision.nic.in

संपर्क करें
फोन : 011 24365609
ईमेल : businesswng@gmail.com
पता : व्यापार स्कंध, कमरा संख्या–758, सूचना भवन, लोधी रोड, नई दिल्ली–110003



जादूगर सम्राट शंकर से बातचीत

कभी लुप्त न हो जादू

जादू कला देश की 62 प्राचीन कलाओं में से एक है। दर्शकों में इस कला के प्रति दिलचस्पी सदियों पहले भी थी। इस बात की मिसाल हमारी पौराणिक कथाओं में भी ख़ूब मिलती है। जादू की छड़ी और मायावी शक्तियों की बात प्राचीन काल से चली आ रही है। इधर पिछले 50 बरसों से आज तक की बात की जाए तो भी जादू में दर्शकों की दिलचस्पी लगातार दिख रही है।



प्रदीप सरदाना
ई-मेल : pradeepsardana29@gmail.com

जादू देश की प्राचीन कला है जो भारत से होते हुए विश्व में पहुँची। हमारे यहाँ कभी गोगिया पाशा और सीनियर पीसी सरकार जैसे जादूगरों की धूम होती थी। जादू के लिए सुप्रसिद्ध शब्द 'गिली गिली' पहली बार गोगिया पाशा ने प्रयोग किया था। बाद में 'गिली गिली छू' जादू का पर्याय बन गया। उधर सीनियर पीसी सरकार को तो सन् 1964 में भारत सरकार ने पद्मश्री भी दिया और सन् 2010 में उन पर डाक टिकट भी जारी किया। इनके बाद देश में और भी कई जादूगर आए लेकिन पिछले बरसों में जो विशिष्ट पहचान, लोकप्रियता और सम्मान जादूगर सम्राट शंकर को मिले, वह किसी और को नहीं मिले।

जादूगर सम्राट शंकर पिछले लगभग 50 बरसों से जादू कला को समर्पित हैं। वह अब तक देश-विदेश में हज़ारों जादुई शो कर चुके हैं। लगातार इतने बरसों से नियमित जादू-प्रदर्शन के कारण सम्राट शंकर आज के दौर के सर्वाधिक लोकप्रिय जादूगर हैं। इधर जब देश की यह प्राचीन कला लुप्त होने के कगार पर पहुँच रही है, ऐसे में जादूगर शंकर इस कला को लुप्त होने से बचाने और इसके संरक्षण में भी जुटे हैं।

जादूगर सम्राट शंकर की एक सबसे बड़ी बात यह

भी है कि वह देश के अकेले ऐसे जादूगर हैं जिनकी कला को देश के विभिन्न राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, लोकसभा अध्यक्ष और कई राज्यों के राज्यपाल और मुख्यमन्त्री भी देख चुके हैं तो कितने ही केन्द्रीय मन्त्री और फ़िल्मी हस्तियाँ भी।

बड़ी बात यह है कि उनका दो घंटे का जादुई प्रदर्शन कुछ इस तरह से बना है कि उसे अनेक बार देखने के बाद भी दिलचस्पी कम नहीं होती। पिछले दिनों दिल्ली-राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में ही उनके कई प्रदर्शन हुए जिनमें दिल्ली विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष के उत्सव पर वहाँ विशेष रूप से आयोजित सम्राट शंकर का भव्य प्रदर्शन अविस्मरणीय रहा। तेज़ बरसात के बावजूद क़रीब चार हज़ार दर्शक इनका शो देखने पहुँचे। उधर देश के आज़ादी के अमृत महोत्सव पर हरियाणा सरकार ने गुरुग्राम, फ़रीदाबाद, रोहतक और कुरुक्षेत्र सहित अपने कई शहरों में इनके विशेष प्रदर्शन आयोजित कराए। प्रस्तुत हैं जादूगर सम्राट शंकर से बातचीत के कुछ अंश-



प्रश्न : आपको जादू कला प्रदर्शित करते हुए करीब 50 बरस हो रहे हैं। अपनी इस यात्रा को पीछे मुड़कर देखते हैं तो कैसा महसूस करते हैं?

उत्तर : बहुत अच्छा लगता है कि मुझे जादू कला का प्रदर्शन करते हुए 50 साल हो चले हैं। सच कहूँ तो पता ही नहीं लगा इतना समय कब गुज़र गया। मेरा वास्तविक नाम शिव कुमार मोदी है। मेरा जन्म हरियाणा के एलनाबाद में 6 सितम्बर, 1950 को हुआ था। बाद में हमारा परिवार राजस्थान के श्रीकरणपुर में चला गया। सन् 1962 में हमारे यहाँ उस दौर के प्रसिद्द जादूगर बी.एन. सरकार आए तो मुझ पर भी जादू का जुनून सवार हो गया। कुछ दिन बाद मैंने उन्हें ही अपना गुरु बनाकर जादू की विधिवत् शिक्षा ली। इस दौरान मैं अपनी पढ़ाई भी करता रहा और जादू भी सीखता रहा। क़रीब दस साल बाद 1973 में मैंने छोटे-छोटे जादू दिखाने शुरू किए। फिर सन् 1974 में जादूगर शंकर के नाम से अपना पहला शो राजस्थान के श्रीकरण पुर में किया तो उसे दर्शकों ने बहुत पसन्द किया। बस उसके बाद मेरी जादुई यात्रा चल निकली जो आज भी उसी उत्साह से जारी है।

आप अब तक कुल कितने जादुई प्रदर्शन कर चुके हैं?



मैं देश-विदेश में छोटे-बड़े कुल मिलाकर 25 हज़ार से अधिक प्रदर्शन कर चुका हूँ जिनमें क़रीब 10 हज़ार शो तो मैंने जन कल्याण के लिए किए। जैसे कभी बाढ़, सूखा और भूकम्प पीड़ित की सहायतार्थ तो कभी मुख्यमन्त्री राहत कोश तो कभी रेडक्रॉस के लिए। यहाँ तक कि कारगिल युद्ध से प्रभावित व्यक्तियों के लिए भी। असल में मैंने अपनी जादू यात्रा के आरम्भिक दौर में ही यह निश्चय कर लिया था कि मैं जादू के साथ समाज सेवा भी करता रहूँगा।

आप पहले जादूगर शंकर के नाम से शो करते थे लेकिन बरसों से आप जादूगर सम्राट शंकर के नाम से विख्यात हैं। 'सम्राट' शब्द आपके नाम से कब और कैसे जुड़ा?

असल में जब मेरे जादू कला के प्रदर्शन लोकप्रिय होने शुरू हुए तो उस समय सीनियर पी.सी. सरकार और गोगिया पाशा जैसे महान जादूगर दुनिया से कूच कर गए थे। हालाँकि तब और भी कई जादूगर देश के विभिन्न हिस्सों में थे। सीनियर सरकार बेटे भी जूनियर पी.सी. सरकार नाम से अपने शो दिखाने लगे थे। उनको अपने पिता की प्रसिद्धि का भी लाभ मिला। तब मैंने अपने शो को भव्य बनाने के लिए उसे काफ़ी बड़ा और संगीतमय बना दिया। तब मेरे टोली में 60 कलाकार होते थे। मेरे पास जादुई यन्त्र आदि का भी इतना सामान था कि एक जगह से दूसरी जगह जाने में पाँच ट्रक लगते थे। जिसे देख मुझे करीब 40 बरस पहले ही जादूगर सम्राट बोला जाने लगा। कई जादूगर तो स्वयं मेरे मंच पर आकर मुझे जादूगर सम्राट शंकर बोलते थे। कितने ही केन्द्रीय मन्त्रियों और मुख्यमन्त्री ने भी मुझे जादूगर सम्राट शंकर कहना शुरू कर दिया। मीडिया में भी तब जादूगर सम्राट शंकर चल निकला। तब मैंने भी अपना पूरा नाम यही रख लिया। फिर इसी नाम से ही शो होते आ रहे हैं।

आपकी जादू कला को अब तक कौन कौन-सी बड़ी हस्तियाँ देख चुकी हैं?

यह मेरा परम सौभाग्य रहा है और मैं इसे अपने जीवन की ही नहीं अपनी जादू कला की भी बड़ी उपलब्धि मानता हूँ कि मेरे जादू कला को जो बड़ी हस्तियाँ देख चुकी हैं, उनमें कई बेहद सम्मानीय हैं। अटल बिहारी वाजपेयी भी जब प्रधानमन्त्री थे तो उन्होंने अपने मनाली प्रवास के दौरान अपने पास वहीं बुलाकर मेरा जादू देखा लेकिन प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने तब देखा जब वह गुजरात के मुख्यमन्त्री थे। इधर यदि मैं हरियाणा, हिमाचल, पंजाब, राजस्थान जैसे राज्यों की बात करूँ तो पिछले 40 बरसों में यहाँ जो भी मुख्यमन्त्री और राज्यपाल रहे तो उनमें से क़रीब-क़रीब सभी ने मेरी जादू

कला को देखा। इतना बड़ा सौभाग्य आज तक किसी और जादूगर को नहीं मिला।

आप इतने बरसों से अपने जादुई प्रदर्शन करते आ रहे हैं। पहले के समय और आज के समय में आप दर्शकों में क्या बदलाव देख रहे हैं?

जादू कला देश की 62 प्राचीन कलाओं में से एक है। दर्शकों में इस कला के प्रति दिलचस्पी सदियों पहले भी थी। इस बात की मिसाल हमारी पौराणिक कथाओं में भी खूब मिलती है। जादू की छड़ी और मायावी शक्तियों की बात प्राचीन काल से चली आ रही है। इधर मैं अपने पिछले 50 बरसों से आज तक की बात करूँ तो भी जादू में दर्शकों की दिलचस्पी लगातार दिख रही है लेकिन पहले दर्शक सोचते थे कि यह जादू कोई टोना-टोटका या तन्त्र-मन्त्र है लेकिन आज अधिकांश दर्शक काफ़ी समझदार हो गए हैं। इधर मैं तो अपने प्रदर्शन के दौरान आरम्भ से ही यह कहता आ रहा हूँ कि जादू कोई तन्त्र-मन्त्र नहीं है। यह एक कला है लेकिन सबसे बड़ा अंतर यह आया है कि अब मनोरंजन के नाम पर सिनेमा-टीवी-ओटीटी का बोलबाला है। इसके अलावा फ़ैशन शो, लाइव म्यूज़िक कंसर्ट आदि ने जादू कला को नेपथ्य में भेज दिया है। ऐसे मैं हमारे लिए बड़े शो करना बहुत मुश्किल हो गया है। इससे इस प्राचीन जादू कला पर



वर्ष 2003 में तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी अपने मनाली प्रवास के दौरान जादूगर शंकर का जादू देखते हुए



लुप्त होने का बड़ा ख़तरा मंडरा रहा है।

आपको जादू कला प्रदर्शन में आज और क्या-क्या मुश्किलें आती हैं?

पहली बड़ी मुश्किल तो यह है कि हम अपने जादू-प्रदर्शन अधिकतर सिनेमाघरों में ही करते हैं लेकिन अब सिनेमाघर धीरे-धीरे मल्टीफ़्लेक्स में बदल रहे हैं। मल्टीफ़्लेक्स की क्षमता कम होती है और किराया बहुत ज्यादा। इसलिए हमको आर्थिक रूप से इसमें वारा नहीं खाता। जो और थिएटर हैं वे बहुत कम हैं और उनके भी किराए बहुत हो गए हैं। इसलिए मेरे जैसे जादूगर को अब अपनी टीम 60 की जगह 30-35 व्यक्तियों की करनी पड़ गई है, अपना सामान भी कम कर दिया है जिससे क़ाफ़िला छोटा रहे। मैं चाहता हूँ जादू कला चलती रहे, कभी लुप्त न हो। इसलिए कितनी ही मुश्किलों के बावजूद मैंने जादू कला का प्रदर्शन जारी रखा है। इस बहाने मैं समाज सेवा, सामाजिक शिक्षा और जन-जागरूक अभियान भी जारी रखे हुए हूँ।

मैंने देखा है आप अपने जादू में नवीनता लाने के साथ सामाजिक शिक्षा और जन-जागरूक अभियान में भी समय-समय पर परिवर्तन करते रहते हैं?

जी, तभी हमारे प्रदर्शन को लोग बार-बार देखते हैं। यदि किसी ने हमारा शो पाँच साल बाद देखा। तो उसे उसमें काफ़ी कुछ नया भी मिलेगा। मेरे इन्द्रजाल जैसे कुछ जादुई खेल सदाबहार हैं लेकिन हर साल-दो साल में हम अपनी जादू कला में कुछ नया जोड़ते रहते हैं। पहले हाथी-भालू ग़ायब करने वाले हमारे जादू दर्शकों में बहुत लोकप्रिय थे लेकिन अब नए नियमों के चलते जानवर रख भी नहीं सकते। इसलिए अब हमने बहुत-से ऐसे कार्यक्रमों को जोड़ दिया है जो आधुनिक समय और तकनीक के साथ मेल खाते हैं। जैसे अब रॉबर्ट जैसे खेल जोड़ दिए हैं। हाथी-भालू की जगह अब मंच से कार ग़ायब कर देते हैं।

ऐसे ही पहले सामाजिक संदेश में परिवार नियोजन और दहेज आदि होता था लेकिन अब इसमें काफ़ी जागरूकता आ चुकी है। इसलिए अब पर्यावरण रक्षा, जल बचाओ, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, पॉलिथिन का इस्तेमाल न करने, अपना देश अपनी माटी जैसे संदेश दर्शकों के मनोरंजन के साथ देते हैं। दूसरा हमने अपना पूरा प्रदर्शन इस तरह बनाया है, जिसमें विशुद्ध और स्वस्थ मनोरंजन है, जिससे पूरा परिवार एक साथ बैठकर हमारी जादू कला देख सके। ❑

पुस्तक समीक्षा
1

आंतरिक अभिव्यक्ति की संजीदा ग़ज़लें

कीर्तिशेष महेश 'अनघ' का दूसरा ग़ज़ल-संग्रह 'अब यही पता है' अभी-अभी आया है। 'घर का पता' उनका पहला ग़ज़ल-संग्रह था जो उन्होंने दुष्यंत कुमार की पहली पुण्यतिथि पर उन्हें समर्पित किया था। दरअसल स्व. अनघजी के निधन के उपरांत काफ़ी कुछ इतना अप्रकाशित रह गया है जिसे प्रकाशित होना लाज़िमी था पर अब यह भार उनकी सहधर्मिणी प्रमिला श्रीवास्तव अपने काँधे पर उठाए हुए हैं। अपने वय और वयानुकूल रुग्णता के बावजूद एक जिजीविषा के साथ। वे प्रतिवर्ष उनकी जन्मजयंती पर दो पुस्तकें प्रकाशित कर उनके सम्पूर्ण रचना-कर्म से साहित्यिक बिरादरी को परिचित कराने की ध्येयनिष्ठता को अंगीकार किए हुए हैं।



पुस्तक : अब यही पता है
रचनाकार : महेश 'अनघ'
प्रकाशक : शिवम पूर्णा प्रकाशन, भोपाल (मध्य प्रदेश)
मूल्य : 250 रुपये

महेश 'अनघ' वैसे तो नवगीतकार के रूप में सुस्थापित कवियों में शुमार रहे हैं पर उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में अपने लेखन का कौशल स्थापित किया। उन्होंने नवगीत, ग़ज़ल, खण्डकाव्य, ललित निबन्ध, कहानी जैसी सभी विधाओं में लिखा। इन पंच पल्लवों से सुशोभित अनघजी व्यक्तित्व इतना बहुआयामी है कि असली महेश अनघ कौन-से हैं और कहाँ हैं? इसकी शिनाख़्त करना बहुत मुश्किल हो जाता है फिर भी उनके सम्पूर्ण रचनाकर्म पर दृष्टिपात करें तो यह बात साफ़ तौर पर ज़ाहिर हो जाती है कि नवगीत के प्रतिष्ठित कवि के रूप में ही वे साहित्य जगत में सुस्थापित हुए हैं। नवगीत का प्राण उनकी आत्मा में रचा-बसा है। उनकी कहन, प्रतीक योजना, बिम्बविधान

और शिल्प के कारण वे अन्य रचनाकारों से विलग हैं।

उनके सद्य प्रकाशित ग़ज़ल-संग्रह 'अब यही पता है' की ग़ज़लों से गुज़रने के बाद भासित होता है कि इन ग़ज़लों में आम आदमी का दर्द है–गाँव की छाँव के बहुतेरे चित्र हैं। सौन्दर्य के रूपक हैं। विडम्बनाओं से साक्षात्कार है और वह सब कुछ है जो एक कवि हृदय को टीसता है। उनकी कुछ ग़ज़लें लोकोन्मुखी हैं। दरअसल उनके रचना-कर्म में गाँव एक बीज के रूप में विद्यमान है। वे शहरी जीवन में रहते हुए अपने लोक से विलग नहीं हुए। ऐसा भी नहीं है कि वे अभिजात्य जीवन शैली से अनभिज्ञ रहे हों पर उनका रचना-कर्म सदैव सामाजिक और सामूहिक नैतिकता की पड़ताल करता रहा है। उनकी ये ग़ज़लें अर्थ-विस्तार में व्यापकता लिए हुए कई ऐसे प्रश्न छोड़ती रही हैं जिनका समाधान आज की आवश्यकता बन गया है। प्रश्नाकुलता उन्हें स्वभावजन्य हस्तगत हुई थी सो इसका प्रभाव भी उनके रचना-कर्म में हमें सहज रूप से दिखाई देता है।

इस संग्रह की वैसे तो सभी ग़ज़लें शीर्षक हीन हैं पर प्रारम्भ में दी हुई एक ग़ज़ल में एक फेरीवाले की मासूमियत और उसकी सदाशयता का रेखांकन हमें अचंभित करता है–

'एक अनोखा फेरीवाला बेमतलब घर आता है
दिल की बात छेड़ देता है गठरी खोल न पाता है।'

इस फेरीवाले ने उनके अंत में प्रवेश कर उन्हें इस तरह झकझोर दिया है कि जिस दिन वह नाग़ा कर देता है- एक बेचैनी उनके सिरहाने पसर जाती है-

'जिस दिन उसका नाग़ा होता चूल्हा नहीं आग जलती
मेरी भूख-प्यास से उसका आने भर से नाता है।'

एक दिहाड़ी मज़दूर की पीड़ा उन्हें न केवल संतप्त करती है, प्रत्युत ऐसी परिस्थितियों से वाबस्ता होकर उनका कवि हृदय विचलित भी हो जाता है।

एक और चित्र देखें जहाँ ग़ज़लकार उस अहसास से वाक़िफ़ है जहाँ सम्भावना विवशता का पर्याय बन जाती है- 'तकिए की तरह पास में मन्ज़िल रखी हुई-

सम्भावना के हाथ में मेहन्दी रची हुई।'

रचनाकार हृदय संवेदना से परिपूर्ण है- वह गृहस्वामिनी के व्यक्तित्व को जिस विनम्रता के साथ चित्रित करता है, उसमें उसे उसके सर का बोझ उसके रेगिस्तानी अधरों पर मुस्कान के साथ बिना किसी माँग के उसके दीर्घायुष्य के चित्र उकेरने की शैली उसे अन्य ग़ज़लकारों से अलहदा तो रखती ही है साथ ही भाषायी सौन्दर्य का सुन्दर संस्कार भी चित्रित करती है-

'बहुत भली लगती हो घर का बोझ उठाए तुम
रेगिस्तानी अधरों पर मुस्कान बिखेरे तुम
माँग बहुत विस्तृत है लेकिन कोई माँग नहीं
बनी रहो सौभाग्यवती सिन्दूर सजाए तुम।'

हालिया दौर में जहाँ जुनून को प्रेम की संज्ञा दी जा चुकी हो वहाँ ऐसे अहसासों का अस्तित्वभर होना रिश्तों के मुताल्लिक़ एक गहरी उम्मीद-सी लगती है-

'मकान-ए-दिल को किराए पे उठाया न गया
इस उम्मीद में शायद किसी का ख़त आए।'

शायर यहीं नहीं रुकता-वह नदी की चुप्पी को इंगित करते हुए वर्तमान के अनुत्तरित

प्रश्नों की टोह भी लेता है-

'प्रश्न सारे आज के करते रहे कल-कल सभी
धार पर टिकता नहीं उत्तर नदी ख़ामोश है।'

ग़ज़लकार का ध्यान समाज की उन प्रवृत्तियों पर भी है जहाँ माँगलिक अवसरों पर कुछ स्वनामधन्य रिश्तेदार परिवार के अंदर प्रायः विघ्न बीज बोने का एक कुशल षड्यन्त्र रचते हैं। जहाँ असंतोष के फलस्वरूप एक उभयपक्षीय उदासी पैर पसार लेती है। कमोबेश विवाह का यह स्वरूप हर मध्यम भारतीय परिवार में मिल जाता है।

'घर में लोकगीत आँगन में शतरंजी चालें
आम तौर पर यही रस्म रह गई विवाहों की।'

कवि की अंतर्दृष्टि अपनी तरल संवेदना में इतनी सांद्रता से संतृप्त है कि उसे ज़ख़्मों के तजुर्बे पर सब्र का मरहम लगाना कारगर लगता है-

'ज़ख़्म को इतना तजुर्बा हो गया है अब
सब्र से बढ़कर कोई मरहम नहीं होता।'

ग़ज़लकार यहाँ उन दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों से भी विचलित होता है जहाँ जीविका उपार्जन हेतु महानगरों में गए नव युवक जब स्वास्थ सम्पदा से वंचित होकर श्री-हीन अपने घरों को लौटते हैं-

'सपनों से सोए हम लेकिन सपने मुट्ठी भर लाए
उनको भी ले गए महाजन ख़ाली हाथों घर आए
हमने महानगर में सुन्दर-सुन्दर चेहरे भेजे थे
जब आए तो कंकालों के कँधे पर चढ़कर आए।'

इस संग्रह में भाषा की गंगा-जमुनी तहज़ीब के अंतर्गत ग़ज़ल के विकास की झलक भी इस अशआर में देखने को मिलती है-

'उर्दू के घर की बिटिया है-हिन्दी के घर ब्याही है
तब से रूप निखर आया है कुछ और सयानी हुई ग़ज़ल।'

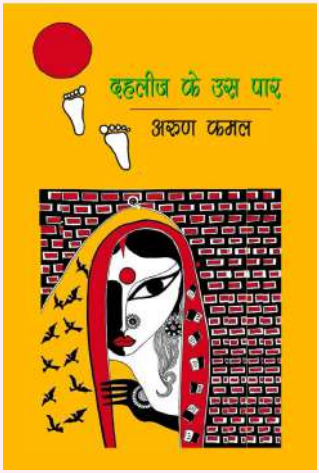
कीर्तिशेष अनघ के इस संग्रह में कुछ ग़ज़लों में नवगीत के प्रतीकों के शेड्स भी दिखाई देते हैं जो कि रचनाकार की मूल विधा का उत्स है-

'इसी जगह पर लगती थीं कल तक सपनों की दुकानें
आज यहीं पर गिद्ध, चील, कौओं के दफ़्तर लगते हैं।'

निष्कर्ष की परिदृष्टि के रूप में हम कह सकते हैं कि समकालीन रचना-संसार में यह संग्रह विरल है। इन ग़ज़लों में छोटी बहर का प्रयोग न के बराबर है। प्रत्युत तवील और बहर तवील में ये सारी ग़ज़लें कही गई हैं। सामान्यतः जिनका प्रयोग हिन्दी ग़ज़लों में कम ही होता है। संग्रह में कुछ-कुछ ग़ज़लों में तो दुष्यंत कुमार की प्रतिच्छाया इस अर्थ में भी लगती है कि वे हमें उनकी शैली के उत्तराधिकारी से दिखाई देते हुए से लगते हैं। भाषा का एक दुर्लभ व्यक्तित्व इन ग़ज़लों में उद्घाटित हुआ है और यह भी कि स्व. अनघ ने अपने भाषायी ढाँचे की स्वायत्तता को भी बरक़रार रखा है। यह ग़ज़ल-संग्रह पठनीयता की माँग तो करता ही है, साहित्य जगत में समादृत होने के साथ-साथ संग्रह की परिधि में भी इसकी फलश्रुति परिलक्षित होती है। ❑

समीक्षक : अनिल अग्निहोत्री
ई-मेल : anilagnihotri2412@gmail.com

स्त्री जीवन के संघर्ष की कहानियाँ



पुस्तक : दहलीज़ के उस पार
लेखिका : अरुण कमल
प्रकाशक : सृजनलोक प्रकाशन, खानपुर, दिल्ली-110062
पृष्ठ : 112
मूल्य : 150 रुपये

'सृजनलोक प्रथम कृति सम्मान 2021' से सम्मानित अरुण कमल का कहानी-संग्रह 'दहलीज़ के उस पार' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण संग्रह है। ग्यारह कहानियों के इस संकलन की प्रत्येक कहानी स्त्री मन और उसके जीवन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास करती है। अरुण कमल एक ऐसी कथा लेखिका हैं जो वादों और विमर्शों से दूर रहकर चुपचाप सृजनरत हैं, उनका यह प्रथम संग्रह ही उनकी दृष्टि का परिचायक है। संग्रह की प्रथम कहानी को छोड़कर सभी कहानियाँ मध्यवर्ग की स्त्रियों के इर्द-गिर्द रची गई हैं। प्रायः सभी स्त्रियाँ अपने मध्यवर्गीय नैतिक संस्कारों के अनुसरण में ही जीवन की सार्थकता समझती हैं, अपनी शक्ति भर वे उन संस्कारों का अनुपालन भी करती हैं पर जब संस्कारों के कारण उनका शोषण होने लगता है तो वे एक झटके में उससे मुक्त भी हो जाती हैं। सारी ही कहानियाँ परिवार संस्था के अंदर चलने वाली गाथाएँ हैं। कहानियों में परिवार और विवाह संस्था की विसंगतियाँ भी हैं और उन्हें बचाए रखने की जद्दोजहद भी अरुण कमल की नायिकाएँ स्वतन्त्रचेता हैं, शिक्षित हैं, अपने अधिकारों के प्रति सजग भी हैं पर स्वतन्त्रता या स्त्री-विमर्श के आंदोलनों की तर्ज़ पर कहीं भी देह-विमर्श की पैरोकार नही हैं। सभी एक मर्यादा में रहकर अपनी स्वतन्त्र-सत्ता की तलाश में हैं।

संग्रह की महत्वपूर्ण कहानी 'दहलीज़ के उस पार' है। प्रायः मध्यमवर्गीय स्त्रियों को घर की दहलीज़ के अंदर

रहने के संस्कार दिए जाते हैं। घर-परिवार, पति-ससुरालीजनों के साथ जीवन-निर्वाह को ही कर्त्तव्य माना जाता है, भले ही अंदर कितने त्रास झेलने पड़ें। कहानी की नायिका रिद्धिमा को भी उसकी माँ सीमा ने कुछ इसी प्रकार के संस्कार दिए हैं। रिद्धिमा पढ़-लिखकर डॉक्टर बनती है। अच्छा घर देखकर उसका विवाह किया जाता है, वह एक बेटी की माँ भी बन जाती है पर ससुराल में उसे कोई सम्मान नहीं मिलता, पति और सास द्वारा निरन्तर मानसिक संत्रास ही मिलते हैं, सबकी अंतहीन अपेक्षाएँ उसे अंदर से तोड़ती रहती हैं। अंततः वह एक दिन दहलीज़ के पार आकर अपना जीवन अपने ढंग से शुरू करती हैं। उसकी माँ सीमा भी इस निर्णय का स्वागत करती हुई कहती है, "संस्कृति-संस्कार जब बोझ बन जाएँ तो उन्हें अपने मन से उतार कर शरीर हल्का कर लेना चाहिए। संस्कार के नाम पर किसी का अत्याचार बर्दाश्त करने की अनुमति किसी को नहीं दी जा सकती। बेटियों को दहलीज़ पार करना हमें सिखाना होगा।"

यह महत्वपूर्ण संकेत है अभिभावकों के लिए कि बदलते समय के साथ आत्मनिर्भर होती हुई बेटियों को दहलीज़ के अंदर के शोषण से मुक्ति के पाठ पढ़ाने होंगे। दहलीज़ के अंदर यदि पति उसकी भावनाओं को समझने वाला और उसका सम्मान करने वाला हो तो स्त्री अन्य वेदनाओं को सहन कर लेती है जैसे कि 'मेरा सर्वस्व' की आएशा। एक क्षण को वह पति सक्षम से नाराज़ होती है पर उसे अहसास होता है कि सक्षम उसकी क़द्र करता है तो वह दहलीज़ से बाहर नहीं जाती। यह कहानी इस ओर भी संकेत करती है कि प्रायः संवादहीनता के कारण पैदा हुई ग़लतफ़हमियाँ सम्बन्धों में दूरियाँ बढ़ा देती है। अतः संवाद चलते रहना चाहिए। थोड़े संवाद, थोड़ी समझदारी परिवारों को टूटने से बचा लेती है।

वर्तमान में बेटियाँ पढ़-लिखकर समर्थ और आत्मनिर्भर बन रही हैं तो उन्हें अपने ढंग से जीवन-यापन की आज़ादी भी चाहिए। अब बेटियों के जीवन का लक्ष्य विवाह मात्र नहीं है, वे स्वतन्त्र भी रहना चाहती हैं। 'मेरी पहचान' की स्मृति विवाह नहीं करना चाहती है। उसका स्पष्ट मानना है, "आज ज़रूरी है कि लड़कियाँ अपनी ख़ुशी स्वयं देखें, स्वयं को पहचानें, अपनी क़ाबिलियत को जानें। भरोसे की ज़िन्दगी छोड़ दें। नारी न पत्नी बने बिना अधूरी है न माँ बने बिना। हम अपने-आप में सम्पूर्ण हैं।"

'अविनिता' की मस्तमौला और खुशमिज़ाज प्रकृति को भी पति द्वारा मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है, बीस वर्षों तक वह सम्बन्ध को बचाने का प्रयास करती है। अंततः वह पति से अलग होने का निर्णय करके स्वतन्त्र जीवन-यापन करती है।

अरुण कमल की अधिकांश नायिकाएँ विवाह-संस्था से पीड़ित और परिवार के अंदर उपेक्षित या प्रताड़ित हैं, पर वे अंत तक सम्बन्धों को बचाने की कोशिश करती हैं, स्वभावतः वे विद्रोही नही हैं। 'बदलते रिश्ते' की स्तुति ससुराल में समायोजन में कष्ट का अनुभव करती है, उसके अंदर विद्रोह के बीज पनपते भी हैं पर अंततः पति की आत्मीयता उसे आश्वस्त करती है। कुछ स्त्रियाँ 'बेमोल ज़िन्दगी' की रीनू कंसल की तरह भी होती हैं जो अनेक गुणों से भरपूर होने के बाद भी जीवनभर घर-परिवार के लिए अपने को होम करती रहती हैं, पर उनकी मृत्यु होते ही अल्प समय में ही पति दूसरी शादी कर लेता है। यह देखकर लेखिका कुछ चुभते सवाल उठाती है- "क्या रीनू के पति की मृत्यु हो गई होती तो वह शादी कर लेती या समाज ने जैसे आगे बढ़कर उसके पति को शादी करने की सलाह

दी है, उसे भी देता क्या? लाखों युवा विधवा महिलाएँ पूरी की पूरी ज़िन्दगी यूँ ही बिता देती हैं, क्या उन्हें साथी की ज़रूरत नहीं होती। लेकिन नहीं यह पुरुष-प्रधान समाज है जहाँ महिलाएँ भी परम्परा और संस्कार के नाम पर अपने पुरुष का ही साथ देती हैं, उनका ही समर्थन करती हैं तो फिर समाज में महिलाओं का पक्ष रखेगा कौन?"

परिवार केवल व्यथाएँ ही नहीं देता, वह संकट में साथ खड़ा होकर आत्मबल भी बढ़ाता है। 'मेरे अपने' इसी भावलोक की कहानी है जहाँ अकेले रह कर नौकरी करने वाली रुचि की बीमारी की अवस्था में उसके चाचा-चाची उसकी तीमारदारी के लिए उपस्थित हो जाते हैं। अभिभावकों की चिन्ता और मनोविज्ञान की भी संकलन में दो कहानियाँ हैं- 'क़रीब लाती दूरियाँ' और 'छवि मेरी कृति', पहली कहानी में पुत्र उच्च शिक्षा हेतु अमरीका जाना चाहता है पर माँ और पिता उसे भारत में अपने पास ही रखना चाहते हैं। दूसरी कहानी में किशोरी-पुत्री स्कूल टूर में जाना चाहती है पर माँ अतिरिक्त चिन्ता और सजगता के कारण उसे अनुमति नहीं देती। दोनों ही कहानियाँ तनाव और द्वन्द्व में आगे बढ़ती हैं पर उनकी परिणित सुखद होती है। बच्चों को शीघ्र ही अपने अभिभावकों के निर्णय सही लगने लगते हैं।

संग्रह की प्रथम और एकमात्र कहानी 'संघर्ष से ऊपर' एक श्रमिक परिवार की कहानी है। कहानी की नायिका जसिंता के पिता नहीं हैं। माँ घरों में बर्तन माँज कर अपने चार बच्चों का पालन-पोषण करती है। अभावों और संघर्षों में पली जसिंता की शादी तभी कर देती है जब वह इंटर में पढ़ रही थी। एक दिन पति उसे छोड़कर चला जाता है। जसिंता विपरीत परिस्थितियों में भी हार नहीं मानती, वह आगे पढ़ती है। उसका बी.एस.एफ. में चयन हो जाता है और गणतन्त्र दिवस के दिन उसे परेड में सम्मिलित होने का अवसर मिलता है।

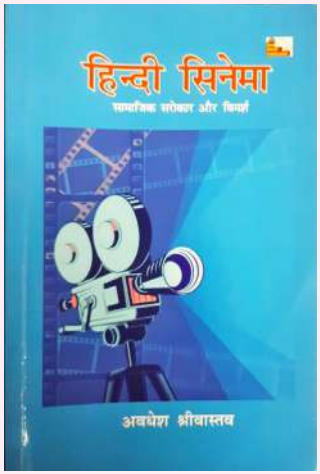
संग्रह में एक बहुत सुन्दर प्रेम कहानी भी है-'सफ़र'। भावना के कोमल तन्तुओं से बनी कहानी का प्रेम मेट्रो के सफ़र में विकसित होता है। ये प्रेम आजकल की युवा पीढ़ी का चटपट वाला प्रेम नहीं है, अपितु धीमे-धीमे समझदारी से विकसित होने वाला गम्भीर प्रेम है। मेट्रो से नियमित ऑफ़िस जाने वाली नीमा साथ ही नित्य जाने वाले एक युवा सहयात्री आर्मी अफ़सर अभिनीत झा की नज़रों में अपने लिए प्रेम देखती है। नीमा तलाकशुदा है, एक बेटे की माँ है, अपनी स्थिति समझते हुए पहले वह उस सहयात्री की उपेक्षा करती है पर धीरे-धीरे उसे सब अच्छा लगने लगता है। धीमी गति से विकसित होती हुई प्रेम कहानी कुछ नाटकीय मोड़ों के बाद सुखांत होकर पाठक के भाव-जगत को भी रस सिक्त कर जाती है। इस प्रेम कहानी का वैशिष्ट्य इस बात में है कि इसमें देह नहीं, भावना प्रमुख है।

संग्रह की सभी कहानियों में स्त्री जीवन के संघर्ष की गाथाएँ हैं, हर स्त्री संघर्षरत है और विरासत में परम्परागत संस्कार लिए हैं, ये संस्कार उसे हर सम्भव एक मर्यादा में बाँधे रखते हैं और बहुत विवश होकर ही वह प्रतिरोध की राह चुनती है। सभी कहानियों में आदर्श की एक महीन रेखा नायिकाओं के साथ-साथ चलती है, अपनी परिणति में भी कहानियाँ आदर्श की ओर ले जाती हैं। सभी का अंत सुखद है जो पाठकों को संतुष्ट करता है। अरुण कमल ने अब हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ कवि अरुण कमल के नाम को पूरा सम्मान अर्पित करते हुए अपना लेखन का नाम बदलकर अरुणिमा कर लिया है और उनकी आगामी कृतियाँ हमें इसी नाम से मिलेंगी। ❑

समीक्षक : शिवजी श्रीवास्तव
ई-मेल : Shivji.sri@gmail.com

पुस्तक समीक्षा
3

सिने संसार का अंश दर्शन



पुस्तक : हिन्दी सिनेमा : सामाजिक सरोकार और विमर्श
लेखक : अवधेश श्रीवास्तव
प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110012
पृष्ठ : 168
मूल्य : 300 रुपये

'हिन्दी सिनेमा : सामाजिक सरोकार और विमर्श' अवधेश श्रीवास्तव द्वारा सिनेमा तथा सिने अभिनेताओं पर लिखित लेखों का महत्वपूर्ण संग्रह है। महत्वपूर्ण इस अर्थ में कि इन लेखों के प्रणयन से हम हिन्दी सिनेमा की दशा व दिशा का आकलन कर सकते हैं। इसकी विशेषता यह है कि लेखक ने लगभग सभी लेखों को सिनेमाई ग्लेमर की चर्चा से दूर रखकर अपनी सांस्कृतिक दृष्टि से पुष्ट रखा है।

पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। पहले खण्ड में 'सिनेमा और सामाजिक विमर्श' शीर्षक के अंतर्गत कुल 13 लेख हैं और 'कला का शिखर' शीर्षक दूसरे खण्ड में 36 सिने कलाकारों, निर्माता, निर्देशकों के व्यक्तित्व व कृतित्व पर रोचक आलेख संग्रहीत हैं। 'सिनेमा का रोचक संसार' शीर्षक भूमिका में सुप्रसिद्ध फ़िल्म-समीक्षक और नाटककार रवीन्द्र त्रिपाठी के अनुसार, "अलग-अलग लिखा होने के बावजूद इन सब लेखों में एकसूत्रता है।"

स्वयं लेखक द्वारा 'मूक युग से मल्टीप्लेक्स तक' शीर्षक से लिखित पुरोवाक् इस पुस्तक का दूसरा महत्वपूर्ण आलेख है।

पहले लेख 'अजनबी नहीं हैं साहित्य और सिनेमा के रिश्ते' में अवधेशजी ने उन साहित्यकारों का प्रमुखता से ज़िक्र किया है, जिनकी कृति अथवा रचना ने किसी फ़िल्म में स्थान पाया। उनमें प्रेमचन्द से लेकर कथाकार जैनेन्द्र, गीतकार नीरज, भगवतीचरण वर्मा, कमलेश्वर आदि बहुत-से साहित्यकारों की उन्होंने चर्चा की है।

'सिनेमा में समाप्त होता हास्य और उल्लास' में वह कहते हैं, "एक दौर था जब हर सिनेमा में हास्य कलाकार का होना आवश्यक था।" आज भी यदा-कदा हास्य फ़िल्में बनती रहती हैं पर हिन्दी सिनेमा का इतिहास देखा जाए तो पता चलेगा कि यहाँ अधिकांश फ़िल्मों का निर्माण रोमांस और भावुकता पर ही आधारित है।" लेखक का यह आकलन प्रस्तुत हुआ है 'हिन्दी सिनेमा और सामाजिक चेतना' शीर्षक लेख में। अवधेशजी कहते हैं, "देश में हज़ारों की संख्या में फ़िल्मों का निर्माण हुआ है लेकिन जनमानस को वर्गहित के प्रति सचेत करने वाली फ़िल्मों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है।"

'प्यार पर परवान होते आर्टिस्ट' लेख में अवधेशजी ने सिने क्षेत्र की कुछ ऐसी जोड़ियों का ज़िक्र किया है जो साथ काम करते-करते प्रेम के पाश में फँस गईं। आगे वह कहते हैं, "व्यवसाय पक्ष प्रबल होने के साथ-साथ अभिनेता-अभिनेत्रियों की हिट जोड़ियाँ तो आईं पर रोमांस की आवाज़ सीक्रेसी में बदल गई। फ़िल्मों में सेक्स और अपराध के दृश्यों की भरमार दिखाने से दुखी लेखक पूछता है कि "फ़िल्म वालों से यह किसने कह दिया कि दर्शक परदे पर सेक्स और अपराध का इतना वीभत्स चित्रण देखने में रुचि रखता है।" (लेख, 'भोगवादी संस्कृति का पर्याय बन रहा सिनेमा')। 'फ़िल्मों में हिंसा' पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है, "फ़िल्में उसे (आम आदमी को) हिंसा सिखा रही हैं। उसकी भावुकता का फ़ायदा उठा रही हैं। अश्लीलता को लगातार परोसा जा रहा है।"

यह पुस्तक सत्यजित राय, मृणाल सेन, ज़ोहरा सहगल, सुरैया, मीना कुमारी, गीता बाली, शोभना समर्थ, गीता दत्त, नौशाद, हेमंत कुमार, संजीव कुमार, दिलीप कुमार, फ़ारुख़ शेख़, बलराज साहनी, ओम पुरी आदि अपने समय की लगभग सभी सिने हस्तियों के बारे में बहुत-सी रोचक और प्रेरक बातें बताती है। यह बताती है कि जद्दन बाई की बेटी फ़ातिमा राशिद को नरगिस कब और किसने बनाया था। बताती है कि शबाना आज़मी घोर व्यावहारिक रही हैं और स्मिता पाटिल स्वभाव से संकोची थीं। वहीदा रहमान के माध्यम से बताती है कि "कलाकार कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता है, पर उसे वक़्त के साथ ग्रेसफ़ुली रिटायर हो जाना चाहिए।"

इन सब सिने हस्तियों के बारे में जानने-समझने के बाद पाठक की प्यास बुझती नहीं, और बढ़ जाती है। उसे लगता है कि इनके बारे में थोड़ा और अधिक लिखना ही चाहिए था। दादासाहब फाल्के, सोहराब मोदी, पृथ्वीराज कपूर, अशोक कुमार, मोतीलाल, कन्हैयालाल, ललिता पँवार, जॉनीवाकर, महमूद, मुकरी, प्राण सरीखे अनेक सिने सितारे; एस.डी. बर्मन, सी. रामचन्द्र, शैलेन्द्र, भरत व्यास हैं, जिनके बिना 60 और 70 के दशक की फ़िल्में पूरी नहीं होती थीं। इस तरह इस पुस्तक को सिने-संसार के आकाश में चमका दूज का ही चाँद कहा जा सकता है यानी अंश दर्शन। पूर्ण चन्द्र का प्राकट्य अभी शेष है। बहरहाल, दूज के चाँद का भी सांस्कृतिक महत्व हमारे समाज में है। यह पुस्तक एक सद्प्रयास है और इसका व्यापक स्वागत सिने-संसार के रसिक पाठकों तथा शोधार्थियों के बीच किया जाएगा। ❑

समीक्षक : बलराम अग्रवाल

ईमेल : balram.agarwal1152@gmail.com



'आजकल' नवम्बर 1948 अंक से

भारतीय कला

भारत की सीमाओं पर बौद्ध मत का प्रभाव था। ग्रीक कलाकारों को भी बुद्ध की प्रतिमा से प्रेरणा मिली परन्तु उनकी कृतियों से बुद्ध के प्रति श्रद्धा तथा बौद्ध मत का प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय कला के इतिहास में जो इसे गौरव प्राप्त था वह नहीं दिखाई देता। मथुरा में भी कला की प्रगति जारी थी और यह इतनी ख्याति प्राप्त कर चुकी थी कि यहाँ की बनी कुछ विशाल प्रस्तर मूर्तियाँ पूर्व में दूर-दूर तक भेजी गई। दक्षिण में भी कला की प्रगति जारी थी। इसी काल में बनी सृजन की प्रतीक कुशान कालीन प्राकृतियों की अकर्षक मूर्तियाँ हमें मिलती हैं।

नानालाल चमनलाल मेहता

मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की कला मिश्री कला की समकालीन है। यह कला विकसित संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। खुदाई में जो कुछ वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि ईसा से 3,000 पूर्व भी हमारा नागरिक जीवन कितना समुन्नत था। मोहनजोदड़ो तथा यक्षों की विशाल प्रतिमाओं की कला के मध्य दो अथवा तीन शताब्दियों का व्यवधान है। अशोक के काल (272-232 ई.पू.) से ही भारतीय कला में एकदम उच्च प्रेरणाओं एवं नवजीवन का संचार हुआ।

प्राचीन भारतीय कला का दृष्टिकोण तथ्यात्मक था, आध्यात्मिक एवं शास्त्रीय न था। इसका प्रमुख ध्येय जीवन था। मानव-जीवन की अनिवार्य मनोदशाएँ होने के कारण वैभव और आनंद, प्रसन्नता और शोक को भी स्थान प्राप्त था।

देश में कितने ही स्थानों पर कला केन्द्र स्थापित हो गए जिनमें सारनाथ, साँची, तक्षशिला, अमरावती तथा मथुरा प्रमुख कला केन्द्रों में से थे। बुद्ध की जातक कथाओं से कितने ही भित्ति चित्रों को प्रेरणा मिली। साँची तथा अमरावती में भारतीय कला की विशेषताएँ शिल्प की यथार्थता, कला-कौशल, पशु-संसार का अनोखा ज्ञान, नारी के सुघड़ अंगों का गठन स्पष्ट दिखाई देती

है। भारत में कला जीवन की वस्तु थी और इसी कारण कला में ऐंद्रिकता को भी उतना ही स्थान प्राप्त था जितना संयम को।

भारत की सीमाओं पर भी बौद्ध मत का प्रभाव था। ग्रीक कलाकारों को भी बुद्ध की प्रतिमा से प्रेरणा मिली परन्तु उनकी कृतियों से बुद्ध के प्रति श्रद्धा तथा बौद्ध मत का प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय कला के इतिहास में जो इसे गौरव प्राप्त था वह नहीं दिखाई देता। मथुरा में भी कला की प्रगति जारी थी और यह इतनी ख्याति प्राप्त कर चुकी थी कि यहाँ की बनी कुछ विशाल प्रस्तर मूर्तियाँ पूर्व में दूर-दूर तक भेजी गई। दक्षिण में भी कला की प्रगति जारी थी। इसी काल में बनी सृजन की प्रतीक कुशान कालीन प्राकृतियों की आकर्षक मूर्तियाँ हमें मिलती हैं।

यद्यपि स्थापत्य एवं चित्रकला की प्रेरणा बौद्धों से ही मिली है परन्तु भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग की एक अदम्य उत्साह एवं कला कौशल के साथ अभिव्यंजना की गई है जिसका उदाहरण दुर्लभ है। अजंता की समाप्ति के बाद भी भारतीय कला अपने चरम उत्कर्ष को नहीं पहुँच सकी थी। महाबलीपुरम के सुन्दर मन्दिरों, एलिफ़ेंटा की असाधारण गुफाओं और एलोरा के मन्दिरों का निर्माण इसके बाद ही हुआ है।

महान कल्पनाएँ : भारतीय कला अपनी प्राचीन परम्पराओं एवं नई सूझ-बूझ के कारण ही नहीं वरन् महान कल्पनाओं को मूर्त रूप देने में अपनी मौलिकता के लिए प्रसिद्ध है। शिव की नटराज-संतुलित गति की साकार प्रतिमा के रूप में कल्पना की गई। बुद्ध की शान्ति दूत तथा समस्त प्राणियों को शान्ति का सन्देश देने वाले के रूप में कल्पना की गई। इनके अतिरिक्त आदर्श भक्त सुन्दर मूर्ति स्वामी की कल्पना भी की गई। स्वर्गिक सुन्दरियों, अप्सराओं, दैत्यों, यक्षों आदि आकृतियों को जंगम्य मौलिक साँचों में ढाला गया। नारी के कमनीय सुघड़ अंगों को बनावट का विकास भारतीय कला की प्रारम्भिक अवस्था में ही हो गया था और 16वीं शताब्दी के मध्य तक यह कलाकारों को प्रेरणा देता रहा।

स्थापत्य और चित्रकला का नृत्य कला के साथ एक निकटतम सम्बन्ध था। काँगड़ी कला के पहाड़ी चित्रों में जो सीधी-सादी आकर्षक तथा गतिमय रेखाओं की विशेषता है वही भुवनेश्वर तथा खजुराहो के मन्दिरों में भित्ति चित्रों की सुन्दर नारियों और अप्सराओं में दिखाई देती है, यह भारतीय कला थी। ऐसा प्रतीत होता है कि 16वीं शताब्दी के मध्य के उपरांत यह परम्परा टूट गई। नई स्फूर्ति से उत्प्राणित तथा अपने उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखने वाले भारत से आशा की जाती है कि 50 वर्ष का विश्राम उसके लिए काफ़ी होगा और अब वह अपने महान लक्ष्य को पहचानेगा और कला के क्षेत्र में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त करेगा। ❑

- **शती समारोह :** रचनाकार रामदरश मिश्र शताब्दी राष्ट्रीय संगोष्ठी

रघुवीर चौधरी के उद्‌गार

'बनाया है मैंने यह घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे
किसी को गिराया ना दो खुद को उछाला
कटा ज़िन्दगी का सफ़र धीरे-धीरे।'

रामदरश मिश्र की इस मशहूर ग़ज़ल की याद दिलाते हुए गुजराती लेखक रघुवीर चौधरी ने कहा कि बिना किसी प्रतिस्पर्धा के ही ऐसा लेखक हो सकता है जो धीरे-धीरे अपनी राह पर चला हो और समाज की भरपूर स्वीकृति पाई हो। ऐसा कोई लेखक हमारे बीच है तो वह रामदरश मिश्र हैं जिनकी रचनाओं ने व्यापक पाठक संसार को अपनी ओर आकृष्ट किया है। यह बातें साहित्य परिवार की ओर से एचके आर्ट्स कॉलेज और जीएलएस गर्ल्स कॉलेज के संयुक्त सहकार में चीनू भाई सभागार में रामदरश मिश्र की जन्म शताब्दी पर आयोजित एक-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में अध्यक्ष पद से बोलते हुए रघुवीर चौधरी ने कहीं। उन्होंने कहा कि यह उनकी लोकप्रियता ही थी कि गुजरात में डॉ. मिश्र के पहले कविता-संग्रह 'बेरंग बेनाम चिट्ठियाँ' का प्रकाशन गुजरात से उन्होंने ही किया और उनके अनेक गीत, अनेक मुक्तक उन्हें अभी याद हैं जिसकी बानगी भी उन्होंने अपने वक्तव्य में प्रस्तुत की।

कवि-कथाकार-उपन्यासकार-आलोचक और गद्यकार रामदरश मिश्र की



कवि-आलोचक ओम निश्चल



गुजराती लेखक रघुवीर चौधरी

जन्मशताब्दी वर्ष के दौरान देश का यह तीसरा सबसे बड़ा आयोजन है जिसकी अध्यक्षता हिन्दी और गुजराती के जाने-माने लेखक और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त रघुवीर चौधरी ने की।

इस अवसर पर अपने बीज वक्तव्य में हिन्दी के सुपरिचित कवि-आलोचक ओम निश्चल ने रामदरश मिश्र के कृतित्व और व्यक्तित्व का परिचय देते हुए उनकी सुदीर्घ साहित्यिक यात्रा को रेखांकित किया तथा कविता, कथा, उपन्यास और गद्य के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी व्याप्ति और बहुआयामी लेखन की विशेषताएँ उजागर की। उनकी रचनाओं से उदाहरण देते हुए उन्होंने रामदरशजी के कवि व्यक्तित्व की ख़ूबियाँ बताई। उन्होंने कहा कि रामदरशजी ने किसी एक विधा तक अपने को सीमित नहीं किया बल्कि अभिव्यक्ति के जितने क्षेत्र और जितनी विविधताएँ हो सकती हैं, उनका वरण किया और आज़ादी के बाद के मोहभंग की स्थितियों को रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' की तरह अपने शुरुआती उपन्यासों 'जल टूटा हुआ' और 'पानी के प्राचीर' में केन्द्र में रखा। अनेक छोटे-बड़े उपन्यासों में उन्होंने जीवन और समाज की समस्याओं को उठाया और अनेक चरित्रों के साथ सह यात्राएँ कीं। आख़िरी कुछ उपन्यासों में उन्होंने अपनी पत्नी, बेटे और स्वयं को केन्द्र में रखा है।

उद्घाटन सत्र में विशिष्ट अतिथि के रूप में बोलती हुई रामदरश मिश्र की सुपुत्री और दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर, मीडियाविद स्मिता मिश्र ने कहा कि रामदरश मिश्र का लेखन गाँव-देहात और आँचलिक यथार्थ का लेखन है तथा उन्होंने कविता और कथा-क्षेत्र में एक साथ प्रवेश किया और अपने जीवन में बेहतरीन गीत लिखे। उन्होंने ग़ज़लों की भी एक लम्बी पारी खेली और हिन्दी-संसार को अनेक ग़ज़ल-संग्रह दिए। स्मिता मिश्र ने रामदरश मिश्र को एक पिता के रूप में भी चित्रित किया तथा कहा कि वास्तव में उन्होंने स्त्री पात्रों को और स्त्रियों को अपने जीवन में भी बहुत महत्व दिया है जिसकी वे साक्षी रही हैं। यही कारण है कि उनके कथा-साहित्य में स्त्री पात्र बहुत दृढ़ और साहसी हैं।

कथा सत्र की अध्यक्षता करते हुए स्मिता मिश्र ने रामदरशजी की क़िस्सागोई की अनेक ख़ूबियों का बखान किया। इस सत्र के वक्ताओं-मृदुला पारीक, रामगोपाल सिंह एवं ज्योति दवे ने रामदरश मिश्र की कहानियों की बारीक विशेषताओं का विश्लेषण किया। इस सत्र का संचालन शिरीन शेख़ ने किया। रामदरश मिश्र की कविता एवं आत्मकथा विषयक के वक्ता थे नियाज़ पठान एवं ईश्वर सिंह चौहान तथा अध्यक्षता के.के. वैष्णव ने की।

प्रारम्भ में गोवर्धन बंजारा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, एच.के. आर्ट्स कॉलेज ने संगोष्ठी की प्रासंगिकता और आवश्यकता की चर्चा की तथा बताया कि यह पूरे गुजरात का सौभाग्य है कि वह शताब्दी वर्ष में शब्दों के चितेरे अनूठे कवि-कथाकार को याद कर रहा है। एच. के. आर्ट्स कॉलेज, अहमदाबाद के मुख्य व्यवस्थापक धीरेन अवासिया ने अपने स्वागत-वक्तव्य



में आगत विद्वानों का स्वागत किया तथा साहित्य परिवार की ओर से अतिथियों का शॉल और पुस्तक से स्वागत किया गया। इस अवसर पर विद्वानों को साहित्य परिवार की ओर से सम्मानित भी किया गया। समारोह के प्रारम्भ में संगोष्ठी के संयोजक सूर्यदीन यादव, जयवंत सिंह सरवैया, धरम सिंह देसाई एवं धीरज वणकर ने सम्बोधित किया। रामदरश मिश्र पर दशाधिक पुस्तकों के लेखक व संगोष्ठी के संयोजक सूर्यदीन यादव ने संगोष्ठी को सार्थक बनाने के लिए विद्वान वक्ताओं के प्रति आभार व्यक्त किया।

रिपोर्ट : **सूर्यदीन यादव**

• राजकमल चौधरी सम्मान से सम्मानित हुए शंकर

"सादतपुर साहित्य समाज से मुझे आत्मीयता मिलती है। यह अपनी ज़िन्दगी को पहचानने की तरह है। मैं इतनी देर आजकल रुकता नहीं। यह सम्मान उन विष्णु चन्द्र शर्मा ने प्रारम्भ किया था जो कभी 'कवि' नाम की पत्रिका बनारस से निकालते थे। वही उस पत्रिका के सब कुछ थे। दो आने की यह पत्रिका उस समय की पहचान थी।" दिल्ली के गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान में आयोजित 23 सितम्बर, 2023 को राजकमल चौधरी सम्मान समारोह में अध्यक्ष की हैसियत से वरिष्ठ आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी ने यह उद्‌गार व्यक्त किए। उन्होंने कहा : इस सम्मान का एक विशिष्ट अर्थ है। इतनी संक्षिप्ति और खुलापन सम्मानित होते लोगों में मैंने कम पाया है। शंकर ने जब लिखना शुरू किया होगा, तब वे शंकर ही रहे होंगे। प्रेमचन्द भी अपने मॉडलों से अलग थे। प्रेमचन्दीयत को ढूँढना आसान नहीं है। शंकर के रचनाकार ने अच्छी चीज़ों को ग्रहण करना सीखा है। उन्हें पढ़ते हुए यह पता नहीं चलता कि

रचना का शिल्प क्या है। मुझे उम्मीद है कि साहित्य शंकर की साधना से बहुत दिनों तक समृद्ध होता रहेगा। अच्छी बात है कि शंकर सम्पादकों के उस रोग से मुक्त हैं जो अपने लिए कुछ चाहते रहते हैं।

प्रारम्भ में मित्र निधि के सदस्य हीरालाल नागर ने वक्ताओं का स्वागत किया और बताया कि यह सम्मान अब तक इब्बार रब्बी, पंकज बिष्ट और विजेन्द्र को प्रदान किया जा चुका है। निधि के अध्यक्ष महेश दर्पण ने बताया : यह सम्मान हर दूसरे वर्ष प्रदान किया जाता है। एक बार कथाकार को और एक बार कवि को। यह चौथा राजकमल चौधरी सम्मान कहानीकार और 'परिकथा' के सम्पादक शंकर को प्रदान किया जा रहा है। उनका चयन इस बार के निर्णायक वरिष्ठ आलोचक जानकी प्रसाद शर्मा ने किया है। निधि की ओर से ही अब रमाकांत कहानी पुरस्कार भी आयोजित किया जाएगा।

राजकमल चौधरी के सुपुत्र नीलमाधव चौधरी ने राजकमल की दो मैथिली कविताएँ - 'मित्र राग' और 'चेतना बोध' हिन्दी अनुवाद सहित सुनाई।

जानकी प्रसाद शर्मा ने राजकमल चौधरी की कहानी 'पत्थर के नीचे दबे हाथ' को पढ़ते हुए ग़ालिब की याद आने का स्मरण किया और कहा कि एक बड़े रचनाकार में कितनी परम्पराएँ समाहित होती हैं! उन्होंने कहा : इस सम्मान के चयन के लिए रचनाकार का चयन करना मेरे लिए किसी सख़्त इम्तेहान की तरह ही था। आज की सम्मान संस्कृति के सामने राजकमल के नाम पर प्रारम्भ यह सम्मान एक ऐसी शख़्सियत ने शुरू किया जो खुद एक मयार हैं। शंकर ने प्रगतिशील आंदोलन की विरासत से प्रेरित होकर लेखन आचरण की शुचिता का संस्कार ग्रहण किया। प्रलोभनों के समय में यह मुश्किल काम है। उन्होंने शंकर की 'पहिए', 'जगो देवता जगो', 'खोह' आदि कहानियों का उल्लेख करते हुए उन्हें आज का एक उल्लखनीय रचनाकार और ऐसा सम्पादक बताया जो युवा रचनाकारों को सामने लाने में रुचि रखता है।

सम्मान स्वीकार वक्तव्य में शंकर का कहना था : पहली बार मुझे यह कोई सम्मान आज मिला है। कुछ ही पुरस्कार हैं हिन्दी में जिन्हें विरल विशिष्ट माना जा सकता है। राजकमल चौधरी सम्मान ऐसा ही है। वह लीक से हटकर चलने वाले रचनाकार थे। 'मछली मरी हुई' और 'मुक्ति प्रसंग' जैसी रचनाएँ इसका प्रमाण हैं।

रिपोर्ट : **हीरालाल नागर**

• कुँवर नारायण की याद में

कवि-विचारक कुँवर नारायण की जयंती पर इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में 20 सितंबर 2023 आयोजित कार्यक्रम में वक्ताओं ने कहा कि कुँवरजी की कविता मनुष्यता का जयघोष करने वाली होती हैं। वे हमें द्वन्द्व के क्षणों में रास्ता दिखाती हैं। दो सत्रों में आयोजित हुए इस कार्यक्रम के पहले सत्र 'कविता और किताब' में सुदीप्ति, कुमार मंगलम, पंकज कुमार

बोस, पूनम सिंह और जितेन्द्र रामप्रकाश ने कुँवर नारायण की अनेक कविताओं का पाठ किया। वहीं रंगकर्मी रमा यादव और उनके सहयोगियों ने कविता वाचन के साथ कुँवरजी की कविता 'कमरे में धूप' का मंचन भी किया।

दूसरे सत्र में राजकमल प्रकाशन से हाल ही में प्रकाशित कुँवर नारायण के साथ संवादों की किताब 'जिए हुए से ज़्यादा' पर परिचर्चा हुई। परिचर्चा के इस सत्र में प्रयाग शुक्ल, मृणाल पाण्डे, हरीश त्रिवेदी, अनामिका से रेखा सेठी ने बातचीत की। इस दौरान मृणाल पाण्डे ने कहा, "कुँवर नारायण की रचनाओं में पात्र एक काल से दूसरे काल में आते-जाते रहते हैं। जैसे समय की कोई सीमा न हो। उन्होंने अपनी रचनाओं में सीमाओं का स्पष्ट उल्लंघन किया है।" उन्होंने कुँवर नारायण के कहानी-संग्रह 'बेचैन पत्तों का कोरस' से कुछ कहानियों का अंशपाठ भी किया।

कुँवर नारायण के लेखन की विशेषताओं पर दृष्टि डालते हुए हरीश त्रिवेदी ने कहा, "उनकी कविताओं का कथ्य और शिल्प जितने सुविचारित लगते हैं, उतना किसी और कवि में नहीं दिखता। वे अपने चिन्तन-मनन और स्वभाव से जहाँ पहुँच गए, वो हमारे लिए बहुत प्रेरणीय है।"

कुँवर नारायण के दर्शन पर बात करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार अनामिका ने कहा कि अगर हम पेंडुलम की तरह देखें



तो सुख-दुख हमेशा आते-जाते रहेंगे। वह स्थिर तभी होगा जब हम डोलना छोड़ देंगे। "संस्कृतियाँ जब लड़-लड़कर थक जाती हैं तो एक समय आता है जब वे गले मिलकर एक हो जाती हैं।"

बातचीत को आगे बढ़ाते हुए प्रयाग शुक्ल ने कहा, "कुँवरजी को आप हमेशा एक ही जगह से देख ही नहीं सकते हैं। उनकी दुनिया बहुत बड़ी है। हम उसे छू भी नहीं पाते हैं। वे एक साथ कितनी ही दिशाओं में चले जाते हैं।" कविता के साथ-साथ कलाओं से भी उनको गहरा लगाव रहा है। कलाओं से उनका सम्बन्ध कितना गहरा था, यह उनकी रचनाओं में झलकता है।

ग़ौरतलब है कि कुँवर नारायण की याद में उनके परिवार की ओर से तीन-दिवसीय कार्यक्रम आयोजित किया गया था। इसमें दो दिन का कार्यक्रम ऑनलाइन हुआ। तीसरे दिन का कार्यक्रम राजकमल प्रकाशन समूह और इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के सहयोग आयोजित किया गया। कार्यक्रम के आख़िर में कुँवर नारायण के पुत्र अपूर्व नारायण ने सबका आभार व्यक्त किया।

रिपोर्ट : **संतोष कुमार**

• रतनव द्वारा त्रिदिवसीय नाट्य रंगोत्सव का आरम्भ

रतनव द्वारा तीन दिन के नाट्य रंगोत्सव का आग़ाज़ श्रीराम सेंटर में 'यम पुत्र' नाटक के साथ शुरू हुआ। पहले दिन प्रसिद्ध लेखक विकास कुमार झा द्वारा लिखित नाटक 'यम पुत्र' का मंचन किया गया। साथ ही पद्मश्री अशोक चक्रधर को रंगमंच के प्रति उनके आजीवन समर्पण के लिए 'आजीवन रंग सेवा पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

रमा पाण्डे द्वारा निर्देशित और प्रस्तुत ये नाटक आधुनिक समाज में महिलाओं की समस्याओं पर सीधे सवाल उठाते हैं।

रतनव उन कलाकारों का सम्मान करती है जो 60 से ऊपर के हो चुके हैं और जिन्होंने पाँच क्षेत्रों- टेलेविज़न, थिएटर, रेडियो, फ़िल्म और लेखन में अहम योगदान दिया है।

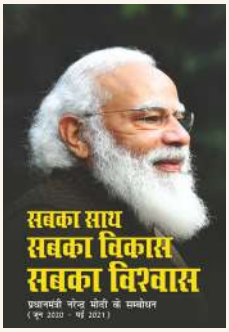
अशोक चक्रधर ने इस मौक़े पर कहा, "मैं एकांत में खुद से पूछता हूँ कि मैं क्या चीज़ हूँ, मेरा वजूद क्या है? तो मैं पाता हूँ कि मैं एक नाटककार हूँ और ये एक सच्चाई है और मैं समझता हूँ कि नाटक मेरा पहला प्रेम है, मैं मूलतः रंगकर्मी ही हूँ और मैं आभारी हूँ कि मुझे आजीवन रंग सेवा पुरस्कार दिया जा रहा है"।

भारतीय शास्त्रीय नृत्यांगना सोनल मानसिंह ने भारतीय लोक नृत्यों के विलुप्त होने पर अपनी चिन्ता ज़ाहिर करते हुआ कहा, "लोक संगीत, लोक नृत्य इत्यादि विलुप्त हो रहे हैं। जिसको हम शास्त्रीय संगीत कहते हैं वो तो बचा हुआ है लेकिन शास्त्रीय नृत्य धीरे-धीरे किसी और दिशा में जा रहा है। यदि हम इसके प्रति सजग नहीं रहे तो शास्त्रीय नृत्य भी धीरे-धीरे विलुप्त हो जाएगा"।

रिपोर्ट : **संतोष कुमार**



प्रकाशन विभाग की पुस्तकें



(जून 2020-मई 2021) - खण्ड 2
मूल्य : 1265 रुपये
पृष्ठ : 645



(जून 2021-मई 2022) – खण्ड 3,
मूल्य : 1065 रुपये
पृष्ठ : 580

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें
वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के सम्बोधन

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के अद्भुत नेतृत्व गुणों में दूरगामी सोच और दूरदृष्टि का समावेश है और वे अपनी सोच और विचारों को बेहद सहजता से सम्प्रेषित करते हैं। किसान हों या इंजीनियर, वैज्ञानिक हों या लेखक, छात्र हों या शिक्षक, आम जन हों या राजनेता, श्रोताओं का कोई भी समूह उनके साथ ऐसे जुड़ जाता है मानो वे उन्हीं में से एक हों। देश-विदेश हर जगह वह लोगों से एकाकार हो जाते हैं। यह विशिष्टता उनके भाषणों को ख़ास बनाती है। उनके भाषण नीति, प्रशासन, सेवाओं की उपलब्धता और परिणामों के विषय में उनके दृष्टिकोण को दर्शाते हैं।

पहले से बड़े जनादेश के साथ मिले दूसरे कार्यकाल ने न केवल प्रधानमन्त्री मोदी को दृढ़ निश्चयी और सशक्त नेता के रूप में स्थापित किया है, बल्कि भारत को नई ऊँचाइयों पर ले जाने के उनके संकल्प को नई ऊर्जा और नई ताक़त भी दी है। उनके भाषणों के संस्करणों की दूसरी शृंखला को सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास शीर्षक दिया गया है।

'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास-

2' प्रधानमन्त्री कार्यालय में उनके दूसरे कार्यकाल के दूसरे वर्ष, यानी जून 2020 से मई 2021 तक के 86 भाषणों का संग्रह है। दस खण्डों के नाम हैं : आत्मनिर्भर भारत; सिटीज़न-फ़र्स्ट गवर्नेंस; कोविड-19 और बदलता विश्व; उदीयमान भारत; जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान; टेक इंडिया, न्यू इंडिया; हरित भारत, ओजस्वी भारत, स्वच्छ भारत; स्वस्थ भारत, सक्षम भारत; शाश्वत भारत, आधुनिक भारत और मन की बात। ये भाषण जहाँ आम जन को राष्ट्र निर्माण में भागीदारी के लिए आगे आने को प्रेरित करते हैं, वहीं अधिकारों के साथ-साथ कर्त्तव्य पालन के लिए उद्वेलित भी करते हैं।

खण्ड-3 प्रधानमन्त्री कार्यालय में उनके दूसरे कार्यकाल के तीसरे वर्ष, यानी जून 2021 से मई 2022 तक के 80 भाषणों का संग्रह है। इस पुस्तक में नौ खण्ड हैं जिनके नाम हैं– स्टार्ट-अप इंडिया; सुशासनः सबका प्रयास; स्वास्थ्य और बदलता विश्व; उदीयमान भारत; छोटा किसान – बने देश की शान; नारी शक्ति-राष्ट्र शक्ति; खेलो इंडिया, फ़िट इंडिया; शाश्वत भारत और मन की बात। ये भाषण राष्ट्र के नागरिकों को आज़ादी के अमृत काल में नई ऊँचाइयों को हासिल करने के लिए सामूहिक प्रयास की भावना से अवगत कराते हैं। साथ ही, 'राष्ट्र प्रथम-सदैव प्रथम' को हर भारतीय नागरिक की सर्वोच्च प्राथमिकता बनाते हैं।

दोनों खण्डों में इन भाषणों के विश्लेषण के लिए इन्फ़ोग्राफ़िक्स का उपयोग किया गया है। साथ ही, हर खण्ड के साथ खण्ड-सारांश दिया गया है जिससे पाठकों को यह जानने में सुविधा होगी कि आने वाले खण्ड के भाषणों में माननीय प्रधानमन्त्री ने किन विषयों पर चर्चा की है। इन दोनों खण्डों के हर भाषण के साथ क्यूआर कोड भी दिया गया है जिसे स्कैन करके उस भाषण को सुना और देखा जा सकता है।

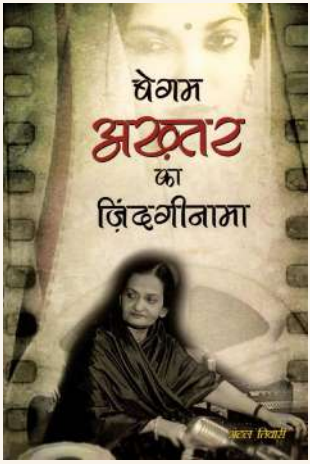
प्रधानमन्त्री के भाषणों के संग्रह के दोनों खण्ड शोधार्थियों, विद्यार्थियों और आम पाठकों के लिए बहुत उपयोगी साबित होंगे और सभी को इससे कुछ-न-कुछ सीखने को मिलेगा। ❑

प्रस्तुति : **प्रियंका सिंह**

हमारे विक्रय केन्द्र : नई दिल्ली : सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260, **लखनऊ :** हॉल नं.1, दूसरी मन्जिल, केन्द्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, **कोलकाता :** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, **पटना :** बिहार : रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, **मुम्बई :** 701 बी-विंग, सातवीं मन्जिल, केन्द्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुम्बई, दूरभाष : 9522-27570686, **बंगलुरु :** एफ़ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244, **अहमदाबाद :** 4-सी, नेपच्यून टॉवर (एच.पी. पेट्रोल पम्प के निकट), नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड, दूरभाष : 079-26588669, **हैदराबाद :** कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर्स, कावादिगुडा-500080, **चेन्नई :** राजाजी भवन, एनी बेसेन्ट नगर, दूरभाष : 044-24917673, **तिरुअनन्तपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650

प्रकाशन विभाग की पुस्तकें

बेगम अख़्तर का ज़िन्दगीनामा



लेखक : अटल तिवारी
प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लैक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
पृष्ठ संख्या : 144
मूल्य : 135 रुपये

पुस्तकें ख़रीदने और सूची देखने के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट publicationsdivision.nic.in देखें। वेबसाइट पर जाने के लिए QR कोड स्कैन करें।

अख्तरी बाई फ़ैज़ाबादी (बेगम अख़्तर) का जन्म 7 अक्तूबर, 1914 एक सिविल जज सैय्यद असग़र हुसैन के घर हुआ था। इनकी माता का नाम मुश्तरी बाई था। ये जुड़वाँ बहनें पैदा हुई थीं। बड़ी बेटी को दुलार में 'बिब्बी' कहा जाने लगा और छोटी को 'ज़ोहरा'। वैसे बिब्बी का नाम अख़्तरी था।

वस्तुतः यह पुस्तक बेगम अख़्तर के जीवन पर आधारित एक रेडियो रूपक का पुस्तकाकार स्वरूप है। रेडियो धारावाहिक के रूप में इसके कुल 13 एपिसोड थे जिसे पुस्तक में भी यथावत प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के लेखक अटल तिवारी ने इस कार्य के लिए न सिर्फ़ काफ़ी मशक्कत की है बल्कि सच की तह तक पहुँचने के लिए उन्हें बेगम अख़्तर के मूल गृह जनपद फ़ैज़ाबाद के कई चक्कर भी लगाने पड़े।

बेगम अख़्तर के बारे में जानकारी जुटाने के क्रम में लेखक ने उनसे जुड़ी किताबें, निबन्ध, बेगम अख़्तर की कोठी, वहाँ के बाशिंदों तथा आस-पड़ोस के लोगों से बातचीत कर बेगम अख़्तर के जीवन से जुड़ी हर छोटी-बड़ी घटनाओं की जानकारी जुटाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। पुस्तक में लेखक ने बेगम अख़्तर के जन्म तथा पिता द्वारा परित्याग, उनकी शिक्षा-दीक्षा, अपने ख़ानदानी पेशा– गीत-संगीत की तरफ़ बिब्बी का झुकाव आदि के बारे में बताया है।

आगे लिखते हैं कि कैसे बिब्बी के शौक और लगन को देखते हुए उनकी माँ ने इमदाद ख़ाँ से उसे संगीत सीखाना शुरू कर दिया। इसके बाद बेगम अख़्तर ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस पुस्तक में बेग़म अख़्तर की ज़िन्दगी और उनकी संगीत यात्रा पर विस्तार से चर्चा है, जिससे हमें बेगम अख़्तर के व्यक्तित्व, संघर्ष एवं उनकी गायकी को और ज़्यादा बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलती है। ❑

प्रस्तुति : **रेमी कुमारी**



हिन्दी पखवाड़ा



प्रकाशन विभाग में हर वर्ष की भाँति इस वर्ष 2023 में भी 14 से 28 सितम्बर, 2023 तक 'हिन्दी पखवाड़ा' मनाया गया और इस दौरान हिन्दी अनुभाग की ओर से पाँच प्रतियोगिताएँ (हिन्दी निबन्ध, सामान्य ज्ञान, हिन्दी ज्ञान और श्रुतलेखन तथा नोटिंग-ड्राफ़्टिंग, कविता-पाठ एवं टंकण प्रतियोगिता) आयोजित की गईं। समारोह के दौरान महानिदेशक महोदया ने सभी को पुरस्कार के लिए बधाई दी। उन्होंने राजभाषा से जुड़े आयोजनों, प्रतियोगिताओं में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते रहने तथा राजभाषा के प्रति अपने नैतिक एवं शासकीय कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहने और उनके अनुपालन के लिए कहा।

स्वच्छता पखवाड़ा







प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशन विभाग के परिसर एवं आस-पास के क्षेत्रों में 1 अक्तूबर, 2023 को 'स्वच्छता पखवाड़ा' के अंतर्गत स्वच्छता अभियान चलाया गया।

भारत 2023



**भारत के प्रांतों, केंद्रशासित प्रदेशों,
भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों तथा
नीतियों, कार्यक्रमों और उपलब्धियों की
आधिकारिक जानकारी देने वाला**

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

ऑर्डर के लिए संपर्क करें :
फोन : 011-24367260
ई-मेल : businesswng@gmail.com
हमारी पुस्तकें ऑनलाइन खरीदने के लिए
कृपया www.bharatkosh.gov.in पर जाएं।

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार
सूचना भवन, सी जी ओ कॉम्प्लेक्स,
लोधी रोड नई दिल्ली -110003
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

सूचना भवन की पुस्तक दीर्घा में पधारें

@publicationsdivision @DPD_India @dpd_India

डाक तार पंजीयन सं. डी एल (एस)-05/3222/2021-23 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डीएन)-49/2021-23
Magazine Postal Regn. No. DL (DS)-42/एम पी 2022-23-24 दिल्ली डाक आर एन आई 701/57
Licenced U (DN)-49/2021-23 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal RNI 701/57
● 10 अक्तूबर 2023 को प्रकाशित ● 21-22 अक्तूबर 2023 को डाक द्वारा जारी



वहीदा रहमान
दादासाहेब फाल्के पुरस्कार
से सम्मानित

प्रकाशक व मुद्रक : अनुपमा भटनागर, महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए संदीप प्रेस, सी-105/2, इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नारायणा, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फरहत परवीन